एकता के सूत्रधार

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

एकता के सूत्रधार श्रद्धानन्द

लेखक
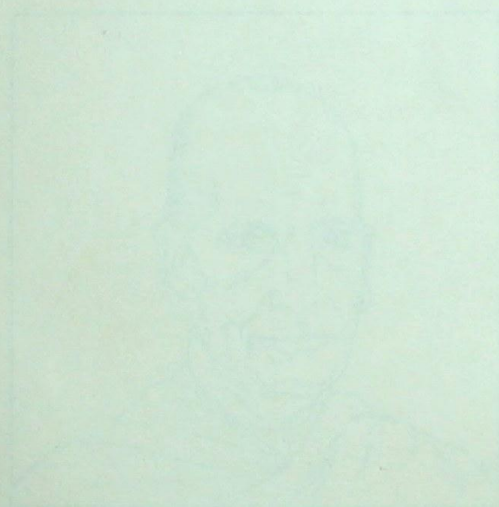
डा० धर्मपाल

वैदिक अनुसंधान संस्थान
आर्य समाज दीवान हाल, दिल्ली

प्रकाशक
सूर्यदेव
मन्त्री, आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली -११०००६

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के
६७ वें बलिदान दिवस
२३ दिसम्बर १९९२
के अवसर पर

लाला रामस्वरूप वेदप्रचार स्थिर निधि
लाला रामस्वरूप पुस्तकालय स्थिर निधि
के सौजन्य से प्रकाशित

प्रथम संस्करण :- १९९२
मूल्य :- १५ रूपये
मुद्रक :- प्रिंट्रेड प्रा० लि०, नई दिल्ली
फोन : ७३२१३४

Ekata Ke Sutradhar : Shradhanand
by
Dr. Dharam Pal

Price : Rs. 15/-

श्रद्धा के शब्द

भारत के सांस्कृतिक इतिहास की कहानी तब तक अपूर्ण रहेगी, जब तक उसमें शिक्षा, समाजसुधार, धार्मिक पुनरुत्थान, वैदिक धर्मप्रसार, हिन्दू-मुसलिम एकता, दलितोद्धार, भ्रातृ मिलन के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द के योगदान का मूल्यांकन न किया जाए । स्वामी जी का कार्य क्षेत्र अनेक दिशाओं में प्रवहमान था । आध्यात्मिक प्रचार, समाजसुधार, पत्र सम्पादन, नारी हितों का संरक्षण, दलितोद्धार शिक्षा एवं राजनीति आदि विविध क्षेत्रों में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई । उन्होंने आर्यसमाज के संगठन को भी सुदृढ़ भित्ति पर प्रस्थापित करने में अपना सशक्त योगदान दिया । स्वामीजी आर्य आदर्शो के प्रति पूर्ण रुपेण समर्पित महामानव थे । उन्होंने गुरुकुलीय शिक्षा के माध्यम से भारतोद्धार के तत्व को समझा था । यह तो सही है कि गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था के द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द ने एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात किया था जिसमें छात्रों का बौद्धिक, शारीरिक तथा आत्मिक विकास चरम लक्ष्य था । इसके माध्यम से वे जात-पाँत के भेदभाव को मिटाकर समानता के आदर्श को स्थापित करना चाहते थे । गुरुकुल में मातृभूमि से प्रेम, राष्ट्रभक्ति तथा स्वदेश गौरव का ऐसा पाठ पढ़ाया जाता था जो उन्हें स्वाधीनता के पथ पर अजेय पथिक बनने में सहयोगी बन सके ।

स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्यसमाज के संगठन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया । वे आर्यसमाज लाहौर की सदस्यता से अपनी यात्रा प्रारंभ करके, आर्यसमाज जालंधर के प्रधान बने । आगे चलकर आर्य पप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान बने । फिर उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की । उन्होंने आर्यसमाज के सार्वदेशिक संगठन की आवश्यकता को अनुभव किया और अपनी इस अनुभूति को कार्य रुप में परिणत कर दिया । स्वामी श्रद्धानन्द के आदर्श और कार्य सदैव 'महानता' को लिए होते थे 'लघुता' उनका ध्येय न था । इसी भावना के लिए वे राष्ट्रीय राजनीति में कूद पड़े । वे कांग्रेस के सदस्य बने । महात्मा गांधी उन्हें बड़ा भाई मानते थे तथा वे दिल्ली को 'श्रद्धानन्द की नगरी ' कहा करते थे ।

उनके हृदय में हिन्दू-मुसलमानों-ईसाइयों को आपस में मिलाकर एकता स्थापित करने की टीस बहुत गहरी बैठ चुकी थी । अमर शहीद लेखराम की शहादत के बाद तो यह भावना अत्यधिक बलवती हो गई थी । इस भावना की चरम परिणति इतिहास का वह गौरवमय पृष्ठ है, जब मुसलमानों ने भी अपने हृदय में इस सच्चाई को अनुभव किया ।

३० नवम्बर १९१९ को स्वतंत्रता संग्राम का एक विशाल जुलूस दिल्ली के प्रसिद्ध चाँदनी चौक में आगे बढ़ने की कोशिश में था । अंग्रेज सरकार ने गोरा पल्टन को संगीनों के साथ वहाँ खड़ा किया गया था । उनके संगीनें उठाने पर जुलूस रुक गया । किसी को आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई । इतने में विशाल जनसमूह को चीरते हुए, एक भगवा वेशधारी विशालकाय, तेजस्वी संन्यासी वहाँ पहुँचा और गरजकर कहा--'चलाओ गोली' । इस सिंह जैसी गर्जना पर गौरों की फौज की संगीनें झुक गई । और जुलूस अपने मार्ग पर चल निकला । इस जुलूस में हिन्दू मुसलमान सभी थे । वे उनकी इस महानता से अति प्रभावित हुए, और ४ अप्रैल १९१९ के दिन स्वामीजी को मुसलमान अपनी विश्वविख्यात जामा मसजिद में बुलाकर ले गये । उस दिन जामा मसजिद का वह दरवाजा खुला जो शहनशाह आलमगीर के नमाज पढ़ने आने के समय खोला जाता था । उसी दरवाजे से वे स्वामी जी की सवारी श्रद्धापूर्वक तथा समारोह पूर्वक जामा मसजिद में ले गए । जिस व्याख्यान मंच पर कोई गैर मुसलिम व्याख्यान नहीं दे सका, उसी मंच से स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू मुसलिम एकता को मजबूत करने का सार्थक प्रयास किया था । स्वामी जी का वेदघोष--त्वं हि नः पिता वसो, त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अद्या ते सुम्नयीमहे । (हम सब एक पिता परमात्मा की सन्तान हैं । हजारों प्रकार से सुख देते हुए पालन करने वाली हमारी माँ भी वही है । आओ, हम उसकी गोद में, आपस में मिलकर, भरपूर सुखों को पावें ।"

एक बार यह पूछे जाने पर कि वेद बड़े है या कुरान ? उन्होंने कहा था कि 'मै उस पुस्तक को बड़ा मानता हूँ जिसमें जन्म से नहीं, कर्म से प्रधानता बताई गई हो ।' यह सही है कि स्वामी श्रद्धानन्द को मारकर अब्दुल रशीद जैसे मतान्ध ने अपने मूर्खता पूर्ण कृत्य से इस्लाम के माथे पर कलंक का टीका लगाया जबकि मृत्यु से कुछ दिन पूर्व गोहाटी में आयोजित आदिवासी भारतीय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस अधिवेशन में स्वामी जी ने अपना निम्न सन्देश तार के द्वारा भेजा था 'भारत का भावी सुख हिन्दू मुसलिम एकता पर आश्रित है ।' स्वामी जी का विश्वास था कि एकता जब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक हिन्दू-मुसलमान आपस में मिलकर न रहें । उन्होंने हिन्दू शुद्धि सभा की स्थापना आगरा में सन् १९२३ में इसी आशय से की थी कि मित्रता समान गुण, स्वभाव और कर्म वाले व्यक्तियों में हुआ करती है । अतः बलवान का मित्र बनने के लिए स्वयं भी बलवान और संगठित बनना होगा । साथ ही बिछुड़े हुए या रूठे हुए को घर वापस लाना होगा । उनकी दलितोद्धार सभा भी , सभी को समानता तथा मैत्री भाव दिलाने के लिए थी ।

स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व और कर्तृव्य को जानने की आज की परिस्थितियों में भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी उनके युग में थी । हमारे देश में जो सत्यव्रत के ग्रहण करने के अधिकारी हैं एवं इस व्रत के लिए प्राण देकर जो पालन करने की शक्ति रखते हैं, उनकी संख्या बहुत कम है । स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना सब कुछ देकर, इस कल्याण व्रत को धारण किया था ।

प्रस्तुत जीवन चरित के रचयिता आर्य जगत् के उदीयमान नेता, मनीषी, चिंतक तथा हिन्दी के वरिष्ठ प्रवक्ता और सुलेखक डा० धर्मपाल ने वैदिक साहित्य की अनेक विधाओं में विपुल लेखन किया है । मैं अभारी हूँ कि उन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर सरल और सुबोध भाषा में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन के सोपानों और योगदानों पर संक्षेप में चर्चा की है । पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर विद्वान लेखक के गम्भीर अध्ययन एवं परिश्रम की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । ऋषिभक्त होने की सहधर्मिता के आधार पर आशा करते हैं कि उनकी सारस्वत साधना से सधी हुई लेखनी भविष्य में और सुन्दर सृजन करेगी ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अपूर्व सहयोग देने के लिए पूज्यपाद स्वामी आनन्दबोध जी सरस्वती, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली, श्री सूर्यदेव जी, प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्यसमाज दीवान हाल के अधिकारियों का विशेष आभार मानता हूँ। मैं आभारी हूँ आर्यसमाज के पूर्व कोषाध्यक्ष लाला ज्ञानस्वरूप जी का, जिन्होंने अपने पूज्य पिता ऋषिभक्त स्व० लाला राम स्वरूप जी की स्मृति में "लाला रामस्वरूप वेदप्रचार स्थिरनिधि" तथा "लाला रामस्वरूप पुस्तकालय स्थिरनिधि" स्थापित कर, वेद-प्रचार के कार्य को गति दी है । इन्हीं निधियों से प्राप्त ब्याज से यह पुस्तिका इतने सुन्दर रूप में प्रकाशित हो रही है ।

हमें विश्वास है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन चरित को पढ़ कर हमारे देश वासी एकता के सूत्र में बंधेंगे तथा वे आपसी सहयोग एवं सद्भाव के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होंगे।

-मूलचन्द गुप्त

२३ दिसम्बर १६६२ — *प्रधान, आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली*

लाला रामस्वरूप अग्रवाल

दिल्ली के संभ्रान्त अग्रवाल परिवार में लाला रामस्वरूप अग्रवाल का जन्म ३० नवम्बर १६०१ को हुआ था । आपकी धार्मिक कृत्यों में रुचि प्रारंभ से ही थी । आप युवावस्था में रामायण प्रचारिणी सभा के सदस्य बने । आपने गौरीशंकर मंदिर में धार्मिक कथाएं सुनी तो आपके मन में तात्विक सत्य जानने के लिए जिज्ञासा उमड़ पड़ी । कई विद्वानों से चर्चा करके अपनी शंकाओं का निवारण करना चाहा, पर समुचित उत्तर कहीं से भी न मिला । एक दिन आपका सम्पर्क वैदिक धर्म के अनन्य प्रचारक, सूझ बूझ के धनी, अरबी -फारसी के आलिम फाजिल स्वनामधन्य पं० राम चन्द्र देहलवी से हो गया । बस क्या था, आपकी चिरकाल की ज्ञान पिपासा पल भर में शान्त हो गई । पंडित जी के प्रति आपके हृदय में अगाध श्रद्धा थी । आपने पंडितजी से उपनिषद, दर्शन, कुरान-शरीफ और अन्य अनेक आर्ष ग्रंथों का अध्ययन किया । आप पूरी तरह से वैदिक धर्म के रंग में रंग गए और आर्यसमाज दीवान हाल के सक्रिय सदस्य बन गए । आपने अनेक पारिवारिक विरोधों के बावजूद अपने पिताजी का अन्तिम संस्कार वैदिक रीति से किया । अपने पूज्य पिता जी की स्मृति में गुरुकुल खेड़ाखुर्द में एक यज्ञशाला का निर्माण कराया ।

आपने अपने सुयोग्य पुत्र-पुत्रियों को भी वैदिक धर्म की दीक्षा दी । आपने छोटे पुत्र श्री ज्ञान स्वरूप को गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में पढ़ाया । आप अपना तन मन धन सामाजिक संस्थानों में ही लगाया करते थे । कई वर्षों तक आप गुरुकुल कांगड़ी की संरक्षक सभा के कोषाध्यक्ष भी रहे ।

आर्य समाज दीवान हाल के ६१ वें वार्षिकोत्सव पर १६७५ में आपका अभिनन्दन किया गया था । आप इस असार संसार को १८ दिसम्बर १६७७ को छोड़ गए । आपके सुयोग्य सुपुत्र श्री ज्ञान स्वरूप जी भी आपकी तरह ही सामाजिक सेवा से जुड़े हैं । आपके पुत्र तथा पुत्रियों ने आर्य समाज दीवान हाल में वेद प्रचारार्थ तथा पुस्तकालय संचालनार्थ दो स्थिर निधियों को स्थापित किया था । इन निधियों से प्राप्त ब्याज से इस पुस्तक 'एकता के सूत्रधार श्रद्धानन्द' का प्रकाशन किया जा रहा है । दानदाता परिवार का इस शुभ कार्य के लिए हार्दिक धन्यवाद ।

-सूर्यदेव

प्रधान, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

दिल्ली

भूमिका

संसार का सच्चा इतिहास सदा कुछ व्यक्तियों का ही इतिहास हुआ करता है । भारत का इतिहास भी कुछ महान विभूतियों का ही इतिहास है । सतयुग में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, त्रेता में मर्यादा पुरुषोत्तम राम और द्वापर के योगीराज श्री कृष्ण का नाम सदैव श्रद्धा और सम्मान के साथ लिया जाता है । आधुनिक युग में अनेक महापुरुषों ने क्रान्तिकारी कार्य किए । आज अनेक विभूतियों का इतिहास हमें स्मरण है, परन्तु भविष्य में किसे याद किया जाएगा, यह विचारणीय है । इतिहास उन्हीं को याद करता है जो संसार के कल्याण के लिए समर्पित हों ।

आर्य जगत् में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द का नाम और कार्य बड़े सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है । उन्होंने आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के कार्य को आगे बढ़ाया, उनके विचारों को क्रियान्वित किया, उनके उद्देश्यों को जन-जन तक पहुँचाया । उन्होंने स्वयं को 'कल्याण मार्ग का पथिक' बनाया, जो महर्षि दयानन्द के दिव्य जीवन से प्रेरणा लेकर, समस्त विश्व के कल्याण के लिए निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ता रहा । वह एक साधारण पुरुष से महापुरुष बना । वह व्यष्टि से ऊपर उठकर समष्टि में लीन हो गया ।

संसार के महान पुरुषों को दो कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता हे । एक कोटि में वे महापुरुष हैं, जिनके जीवन में आरंभ से अन्त तक उदात्तता रही है जैसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगीराज श्रीकृष्ण, महावीर, महात्मा बुद्ध , स्वामी दयानन्द आदि । दूसरी श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं, जिनके जीवन में अनेक मानव सुलभ दुर्बलताएं रहीं है, परन्तु वे अपनी प्रबल इच्छा शक्ति और आत्मसाधना द्वारा अपने जीवन को ऊंचाईयों पर ले जाने में सफल हुए । महर्षि वाल्मीकि, मोहनदास करमचन्द गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को इसी श्रेणी में रखना उपयुक्त होगम । इस कोटि के व्यक्ति हमारी अवस्था के अधिक निकट हैं । वे सर्वसाधारण के अत्यधिक निकट है । ऐसे ही व्यक्ति मानव मात्र को प्रेरणा दे सकते हैं कि वे अपने आप को ऊंचा उठाएं, वे खुदी को बुलन्द करें ।

वह दिन भारतीय सांस्कृतिक जागरण के इतिहास में सदैव याद दिया जाएगा, जिस

दिन युवा मुंशीराम ने क्रान्ति के अग्रदूत, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, समाजसुधारक, नवयुग निर्माता, आर्य सभ्यता और संस्कृति के उन्नायक, अगाध पांडित्य एवं अलौकिक तर्कशक्ति से संपन्न, अपने ओजस्वी और तेजस्वी प्रभाव से युग की काया पलट करने वाले महर्षि दयानन्द का प्रथम दर्शन एवं सत्संग लाभ किया था । महर्षि दयानन्द की तार्किक युक्तियों ने नास्तिक मुंशीराम की संदेह और अनास्था की शिला को ध्वस्त कर दिया था । उस समय मुंशीराम ने कहा था--'महाराज आपकी तर्कना शक्ति प्रबल है, आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमात्मा की कोई हस्ती है ।' महाराज ने उस समय कहा था --'देखो, तुमने प्रश्न किए, मैंने उत्तर दिए-यह युक्ति की बात थी । मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास करा दूंगा । तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा, जब वे प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे ।' स्वामी जी ने कठोपनिषद की इस धारणा को

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्य तस्येष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ।।'

अपने चिन्तन में दृढ़ता के साथ आबद्ध कर लिया था । अतः मुंशीराम को उन्होंने कहा-'श्रद्धा की वेदी पर विश्वास का दीपक जलाओ, परमेश्वर का साक्षात्कार होगा ।' मुंशीराम जी की इस मानसी दीक्षा ने उन्हें आगे चलकर महात्मा मुंशीराम और फिर श्रद्धानन्द बनाया । उस समय से लेकर बलिदान होने तक उन्होंने श्रद्धा की उंगली को कभी नहीं छोड़ा । उन्होंने महर्षि को अपना आचार्य स्वीकार करते हुए मथुरा जन्म शताब्दी के अवसर पर निम्न भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी - **'ऋषिवर ! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे ४२ वर्ष (सन् १९२५) हो चुके हैं, परन्तु तुम्हारी दिव्यमूर्ति मेरे हृदय पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी रक्षा की है। तुमने कितनी गिरती हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मुनष्य कर सकता है, बिना परमात्मा के जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो। कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है। परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवनलाभ करने के योग्य बनाया।'** स्वामी श्रद्धानन्द ने महर्षि दयानन्द के उपकार को स्मरण ही नहीं किया, बल्कि उनकी दीप्ति से अपनी जीवन दीप को आलोकित किया । यही दीप आगे चलकर भारत

के महापुरुषों के लिए युग निर्माता नाविकों के लिए दीपस्तम्भ बना ।

जिस युग में स्वामी श्रद्धानन्द ने कार्य किया, वह युग लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, श्री अरविन्द, पं० मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू , सरदार बल्लभ भाई पटेल जैसे महापुरुषों का युग था । उस युग में जो निर्भीक नेता थे, उनमे वे अग्रणी थे। स्वामी जी महाराज के निधन पर इन सभी महापुरुषों ने उन्हें श्रद्धा पूर्वक स्मरण किया था । उन्होंने स्वीकार किया था कि स्वामी श्रद्धानन्द उनके मार्ग दर्शक थे । महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' के छः जनवरी १९२७ के अंक में लिखा था--'स्वामी जी एक सुधारक थे । वे वाक्शूर नहीं, कर्मशूर थे । उनका विश्वास जीवित जागृत था । उसी के कारण उन्हें वह विपत्ति झेलनी पड़ी । वह वीरता की साक्षात मूर्ति थे । उन्होंने आपत्ति में भी कभी साहस नहीं खोया । वह एक योद्धा थे । और एक योद्धा रोग शय्या पर नहीं, परन्तु लड़ाई के मैदान में मरना पसन्द करता है । प्रभु उनके लिए एक शहीद की मृत्यु की कामना करते थे । इसलिए रोगशय्या पर पड़े रहने पर भी एक हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु हुई । गीता के शब्दों में -'सुखिनः क्षत्रिया : पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।' मृत्यु एक वरदान है, परन्तु उस यौद्धा के लिए वह दुगुना वरदान है जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है । यह मृत्यु कोई भयंकर दैत्य या पिशाच नहीं है । वह सबसे अधिक सच्चा मित्र है । वह हमें कष्टों से मुक्त करता है । हमारी इच्छा न होते हुए भी वह वस्तुतः हमारा सहायक होता है । वह सदा हमें नए अवसर और नई आशाएं प्रदान करता है । वह मृत्यु निद्रा के समान हमें नवजीवन प्रदान करती है । फिर भी मित्र की मृत्यु पर शोक मनाने का रिवाज चल पड़ा है । परन्तु शहीद की मृत्यु पर इस प्रकार के रिवाज का कोई महत्व नहीं रह जाता । इसलिए मुझे उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं है । मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है । क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देहलीला समाप्त हो गई है , तथापि वह जीवित है । वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित है, जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे । ऐसी शानदार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध था, वस्तुतः बधाई के पात्र हैं । वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जीए और अन्त में वीर की तरह उनकी मृत्यु हुई ।' महात्मा गांधी का यह आकलन स्वामी श्रद्धानन्द की महत्ता और प्रासंगिकता को रूपायित करता है ।

श्री पं० मदन मोहन मालवीय ने कहा था--'स्वामी श्रद्धानन्द जी का उत्कृष्ट उदाहरण युवक पीढ़ियों के लिए स्फूर्ति का स्रोत होगा जो सदा उनमें आत्म त्याग, तपस्या

और कष्ट सहन की भावना का विकास करने वाला होगा ।' शेरे पंजाब लाला लाजपत राय ने कहा था--'स्वामी जी की हड्डियों से यमुना के तट पर एक विशाल वृक्ष उत्पन्न होगा, जिसकी जड़े पाताल में पहुँचेगी । शहीदों के खून से नए शहीद पैदा होते हैं ।' उस समय के कवियों में तथा विचारकों में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने कहा था-'श्रद्धानन्द जी की भारत को देन उनकी सत्य में श्रद्धा है । श्रद्धानन्द, यह नाम ही उनकी उस भावना का परिचायक है उनके लिए सत्य और जीवन' एक हो गए थे--सत्य ही जीवन था और जीवन ही सत्य था ।' पं० जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' में लिखा है--'स्वामी श्रद्धानन्द में निर्भीकता की आश्चर्य जनक मात्रा थी । लम्बा कद, शाही शक्ल सन्यासी के वेश में बहुत अधिक उम्र हो जाने पर भी बिल्कुल सीधी चमकती हुई आँखें और चेहरे पर कभी-कभी दूसरों की कमजोरियों पर आने वाली चिड़चिड़ाहट या गुस्से की छाया का गुजरना । मैं उस सजीव तसवीर को कैसे भूल सकता हूँ । अकसर वह मेरी आँखों के सामने आ जाती है ।' सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा था 'स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही १६१६ का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है । सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं । स्वामी जी छाती खोलकर आगे जाते हैं और कहते हैं, लो चलाओं गोलियाँ ।" उनकी उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता? मैं चाहता हूँ कि उस वीर सन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे ।'

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने युग में शिक्षा, नारीशिक्षा, दलितोद्धार, शुद्धि आन्दोलन, आर्य सामाजिक संगठन की सुदृढ़ता, स्वाधीनता आन्दोलन, राष्ट्रीय एकता तथा हिन्दू मुसलिम एकता के लिए आजीवन कार्य किया । कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ पर उन्होंने कमी छोड़ी हो । बल्कि यह कहा जाना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने जितना कार्य किया, उतना उस युग के किसी भी अन्य महापुरुष ने न किया होगा ।

जालियाँवाला बाग काण्ड के पश्चात् १६१६ में अमृतसर में कांग्रेस का महाधिवेशन आयोजित करने का श्रेय उन्हीं को है । वे इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे । उनमें कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० महामना मदन मोहन मालवीय, ऐनी विसेण्ट, लोकमान्य तिलक, देश बन्धु चितरंजन दास, विपिन चन्द्र पाल, तथा पं० जवाहर लाल नेहरू आदि उपस्थित थे । उस समय उन्होंने भारतीय जनता का आह्वान करते हुए चार बातें कहीं थी -१. केवल इतनी आवश्यकता है कि आर्य लोग

अपने आचरण को उत्तम बनाकर दीपक बनें ताकि उनसे दूसरे दीपक जलाए जा सकें । २. सभी प्रान्तों में मैने देखा है कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे पर सन्देह करने लगे हैं किन्तु मुसलमान और सिख तो सामाजिक दृष्टि से संगठित हैं, किन्तु हिन्दू सामाजिक दृष्टि से बिखरे हुए है । मेरी सम्पत्ति में इसका उपाय एक ही है कि हिन्दू नेता हिन्दू समाज को सामाजिक दृष्टि से संगठित करें और मुसलमान नेता खिलाफत की अपेक्षा, स्वराज्य की प्राप्ति पर अधिक ध्यान दें । ३. यदि देश और जाति को स्वतंत्र देखना चाहते हो, तो स्वयं सदाचार की मूर्त्ति बनकर अपनी सन्तान में सदाचार की बुनियाद रखें । जब सदाचारी ब्रह्मचारी शिक्षक हों और कौमी हो शिक्षापद्धति तब ही कौम की जरूरत पूरी करने वाले नौजवान निकलेंगे । अन्यथा अपनी सन्तान विदेशी और विचारों से विदेशी सभ्यता की गुलाम बनकर रहेगी । ४. ईसाई मुक्ति फौज भारत के साढ़े छः करोड़ (सन् १६१६) अछूतों को विशेष अधिकार दिलाने के लिए प्रयत्नशील है, क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश सरकार के जहाज के लिए लंगर के समान हैं । आज से ये साढ़े छः करोड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे, बल्कि हमारे भाई बहन हैं, हमारे पुत्र-पुत्रियाँ हैं-उन्हें मातृभूमि के प्रेम जल से शुद्ध करो, उन्हें पाठशालाओं में पढ़ाओ । उनके गृहस्थ नर नारियों को अपने सामाजिक व्यवहार में सम्मिलित करो ।

स्वामी जी महाराज ने ये चार परामर्श किए थे । ये भारतीयता, भारतीय अस्मिता, भारतीय संस्कृति की रक्षा के इतिहास में तथा वैदिक धर्म के प्रसार के इतिहास में प्रकाश स्तंभ के समान हैं । ये सभी बातें आज भी उतनी ही प्रासंगिक है । हम राष्ट्रोत्थान चाहते हैं । निश्चय ही इसके लिए सभी आर्य जनों को अपने चरित्र का विकास करना होगा । वे दीपक बनेंगे, तभी तो दूसरों को सही प्रकाश दे सकेंगे । स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना सर्वस्व दूसरों को प्रकाश देने के लिए न्योछावर कर दिया । उन्होंने तो सर्वमेध यज्ञ किया था । उन्होंने अपने लिए कुछ न किया । मानव जाति के कल्याण के लिए अपना सब कुछ दे दिया । हिन्दू जाति के संगठन के लिए उनकी कही हुई बातें आज भी उतनी ही प्रासंगिक है । मित्रता और बैर समान वालों में होते हैं । अतः अपने को सशक्त करना आज की आवश्यकता है । संगठन का सदा से महत्व है । आज के युग में संगठन की और भी अधिक आवश्यकता है । संगठनात्मक दृष्टि से सुदृढ़ता की आवश्यकता है । स्वामी श्रद्धानन्द शहीद की मौत मरे । शहीद वह व्यक्ति होता है जो किसी उद्देश्य के लिए अपना

उत्सर्ग करे । वे कायर नहीं थे । वे अपनी बात को सशक्त शब्दों में कहना जानते थे । कायर तो प्रतिदिन मरते हैं, पर वीर पुरुष जीवन में केवल एक बार मृत्यु का वरण करते हैं । स्वामी जी ने वीरता पूर्ण कार्य करने की प्रेरणा दी है । उन्होंने सदाचारी बनने तथा अपनी सन्तति को सदाचारी बनाने की बात कही है । अपने जीवन में तो उन्होंने किया भी यही था । आचरण की भाषा मौन होती है, पर उसका प्रभाव शक्तिशाली होता है । वे जो करना चाहते थे, उसे पहले स्वयं करते थे । स्वामी जी ने चौथा परामर्श अछूतोद्धार के लिए दिया था । वास्तव में यह एक चेतावनी थी । यदि इस बात की ओर स्वतंत्र भारत में ध्यान दिया जाता और सबको समानता दी जाती , तो मण्डल कमीशन की रिपोर्ट के बाद का भयंकर रक्तपात और भीषण नरसंहार बच जाता । यदि उनके उपदेशों को ध्यान में रखकर हिन्दू मुसलिम एकता तथा परस्पर सौहार्द एवं सद्भाव बनाने का समुचित प्रयास किया जाता तो भारत का विभाजन न होता और जो एक दूसरे के प्रति सन्देह के अंकुर उत्पन्न हो गए हैं , वे न होते ।

स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है । एक साधारण मानव जो महानता के उच्चतम सोपान तक पहुँचा, वह सारे संसार को सन्देश दे रहा है कि सदाचारी बनो, सबके कल्याण की बात सोचो, सभी को अपना भाई मानों क्योंकि सभी ईश्वर पुत्र हैं तथा साम्प्रदायिक विद्वेष की आग को समाप्त करके सभी को अपनाओ ।

हमें विश्वास है कि स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन चरित पाठकों को संगठन, सहिष्णुता, मानवता और आत्म बलिदान का मार्ग दिखाएगा ।

मैं आर्य समाज दीवानहाल के प्रधान श्री मूलचन्द गुप्त तथा अन्य अधिकारियों का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे महामानव श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व एवं कर्तृव्य को जानने समझने तथा लिखने का सुअवसर प्रदान किया । मुझे आशा है कि पाठक गण उनके जीवन चरित से लाभान्वित होंगे ।

२३-१२-६२

डॉ० धर्मपाल
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जॉकिर हुसैन पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
नई दिल्ली-११०००२.

स्वामी श्रद्धानन्द

जन्म और वंश परिचय

संसार में महान पुरुष केवल अपने समय के लिए ही आदर्श नहीं होते, वे तो अपने युग को आलोकित करने के साथ आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी प्रकाश स्तंभ का कार्य करते हैं । मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगीराज श्री कृष्ण, महावीर, गौतमबुद्ध, गुरुनानक , राजा राम मोहन राय, राम कृष्ण परमहंस , महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे युग पुरुष सदैव याद किए जाएंगे । उन्होंने अपने युग की समस्याओं, आपदाओं का तो निराकरण किया ही आने वाले युग के लिए एक प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया । स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन भी हमारे लिए इसी प्रकार प्रेरणास्पद है ।

स्वामी श्रद्धानन्द का पूर्वनाम मुंशीराम था । मुंशीराम का जन्म फाल्गुन वदी १३, संवत् १६१३ विक्रमी (सन् १८५६) में तलवन जिला जालंधर के प्रसिद्ध खत्री घराने में हुआ था । उनके पिता का नाम लाला नानक चन्द था । मुंशीराम के दादा का नाम श्री गुलाबराय और परदादा का नाम श्री सुखानन्द था । मुंशीराम के पिता, दादा और परदादा सभी ईश्वर भक्त, निर्भय और स्पष्टवक्ता थे । भगवद्‌भक्ति इस कुल की परम्परागत विभूति थी । मुंशीराम को ये सभी गुण पैतृक संपत्ति के रूप में मिले थे । मुंशीराम के परदादा श्री सुखानन्द सुख और आनन्द की साक्षात् मूर्त्ति थे । उनके दादा श्री गुलाबराय भी सच्चे ईश्वर भक्त थे । वे कपूरथला की महारानी हीरादेवी के दायें हाथ समझे जाते थे ।

लाला गुलाबराय जी की छः सन्तानें थीं । श्री नानक चन्द लाला गुलाब राय के साक्षात् मूर्त्त रूप ही थे अपने पिता की सभी आदतें उन्हें उत्तराधिकार में मिली थी । पिताजी की स्पष्ट वादिता उनमें भी कूट कूट कर भरी थी । जिसके कारण उन्हें नौकरी के लिए अनेक जगहों पर जाना पड़ा । उन्होंने कपूरथला में थानेदारी की, पर बाद में किसी बात पर राज्य के मंत्री के साथ कहासुनी हो जाने पर उन्होंने नौकरी छोड़ दी । इसके बाद वे एक सरकारी बैंक में खजाञ्ची बने, पर वहाँ भी अंग्रेज अफसर से उनकी नहीं बनी । फिर वे लाहौर पहुँचे और वहाँ पर चौकीदारों के बख्शी होकर नौकरी करने लगे । यहाँ उनको वेतन कम मिलता था । वे इस नौकरी का छोड़ना ही चाहते थे कि १८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य

संग्राम प्रारंभ हो गया । घर गृहस्थी की समस्याओं से तंग आकर उन्होंने देहली जाने का निश्चय किया और एक टट्टू पर सामान लादकर वे दिल्ली की ओर रवाना हो गए। उस भयंकर विप्लव के समय दिल्ली पहुँचना आसान नहीं था । वे धुन के पक्के थे । छिपते-छिपाते वे ठीक उसी दिन हिसार पहुँचे जिस दिन क्रान्तिकारियों ने शहर पर आक्रमण करने का निर्णय किया हुआ था । हिसार में उनको कोतवाल नियुक्त कर दिया गया । यहाँ से उनके खुशहाली के दिन शुरु हो गए । कंपनी की सरकार ने उनकी सेवाओं को अमूल्य मानते हुए उन्हें पुरस्कार स्वरूप बारह सौ बीघा भूमि अथवा पुलिस इंस्पैक्टर पद प्रस्तावित किया गया । उन्होंने पुलिस इंस्पैक्टर बनकर बरेली पुलिस लाइन्स का चार्ज संभाल लिया ।

इन्हीं पुलिस इंस्पैक्टर के घर में बालक मुंशीराम का जन्म हुआ । मुंशीराम छः भाई बहनों में सबसे छोटे थे । आयुक्रमानुसार सब भाई बहनों के नाम थे -सीताराम, प्रेमदेवी, मूलाराम, द्रौपदी, आत्माराम और मुंशीराम । पौराणिक रीति के अनुसार पाधे ने इनका नाम जन्मपत्री द्वारा 'बृहस्पति' रखा । बाद में यह नाम व्यवहार में नहीं आया और परिवार में इनका नाम मुंशीराम स्वीकार किया गया । परन्तु नाम की अपनी विशेष महत्ता है । वास्तविकता तो यह है कि अपने जीवन में इन्होंने 'बृहस्पति' नाम की सार्थकता को ही प्राप्त किया । गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना, आर्य समाज के संगठन को नेतृत्व प्रदान करना, स्वराज्य आन्दोलन को गति देना आदि कार्य उनके जन्मपत्री के नाम को सार्थक करते हैं । ऐसा मालूम पड़ता है कि उनका जन्म नेता बनने के लिए ही हुआ था । भारत वर्ष का कोई ऐसा आन्दोलन न था जिसमें उन्होंने बढ़चढ़ कर भाग न लिया हो । उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य पद को सुशोभित किया और श्रद्धानन्द सन्यासी बनकर जन्म नाम बृहस्पति को सार्थक किया ।

बाल्यकाल और शिक्षा

बाल्यकाल

लाला नानक चन्द के पद के कारण समाज में उनके परिवार का बड़ा सम्मान था। तलवन गाँव में उनके परिवार का बड़ा सम्मान था । मुंशीराम जब तीन वर्ष के हुए, उस समय लाला नानकचन्द ने अपना परिवार तलवन से बरेली बुला लिया । मुंशीराम भी बरेली पहुँच गए । बरेली में मुंशीराम पुलिस लाइन्स में इधर-उधर घूमता फिरता था । उसके दो बड़े भाइयों को एक मौलवी घर पर ही पढ़ाने आते थे । बालक मुंशीराम भी उत्सुकता वश उनके पास ही बैठकर उनकी बातें सुनता रहता । दूसरे दिन वह पाठ सुनाया जाता, तो दोनों बड़े भाई वह पाठ अच्छी तरह न सुना पाते, लेकिन मुंशीराम उस सुने हुए पाठ को अच्छी तरह सुना देता । मुंशीराम देखकर या सुनकर ही सब कुछ सीख लेते थे । वे अपने भाइयों की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली और मेधावी थे ।

पिता नानक चन्द की बदली बरेली से बदायूं हो गई । वे यहाँ पर कोर्ट इन्स्पैक्टर बनाए गए । मुंशीराम अपने पिता के साथ अदालत में आते । वहाँ मुहर्रिर आदि कर्मचारियों को हंसी हंसी में फौजी सलाम करते । सलाम करना उन्होंने बरेली में ही सीख लिया था । इनाम में वे मुंशीराम को कागज कलम और दवात देते । मुशीराम घर पर बैठकर इन कागजों पर पुस्तकों की नकल करते । यह उनकी पढ़ाई का श्री गणेश था ।

बदायूं से विजिटिंग कोर्ट इंस्पैक्टर बनकर श्री नानक चन्द जी बनारस चले गए । यहाँ भी मुंशीराम की नियमित पढ़ाई प्रारंभ न हो सकी । यहाँ पर भी केवल सुना-सुनाया पाठ याद करने तक ही पढ़ाई सीमित रही । बरेली और बदायूं का लाड़ प्यार यहाँ पर भी जारी रहा । लाला नानक चन्द को प्रायः दौरे पर रहना पड़ता था । दौरे पर रहने के कारण पीछे से परिवार अकेला रहता था । इसलिए उन्होंने एक पंजाबी परिवार को बिना किराये ही अपने मकान में रख लिया । इस पंजाबी परिवार में बनारसी सहवास के कारण छुआ छूत पर विशेष ध्यान देने की परम्परा थी । इस छुआछूत के भूत ने मुंशीराम के बड़े भाइयों को परेशान कर दिया । सुबह शौच के लिए जाते समय कपड़े उतारने पड़ते और यदि नाली पर पैर पड़ जाए तो स्नान करना पडता । जब इस परिवार की ऐसी अंड़गेबाजी असह्य

हो गयी तो, मुंशीराम की माताजी ने उस परिवार को वहाँ से हटा दिया । इस घटना का मुंशीराम के बालक मन पर गहरा प्रभाव पड़ा । वह कार्य की छुआछूत से घृणा करने लगे । बालक मन पर पड़े इस प्रभाव को, भावी जीवन में अंकुरित होने का अवसर मिला और एक ऐसा समय आया जब उन्होंने अछूतोद्धार के लिए संघर्ष भी किया । बनारस में एक और घटना हुई जिसका उल्लेख करना यहाँ पर उचित होगा । बालक मुंशीराम तो लाड़ प्यार में पले थे । उन्होंने यह भी न जाना था कि डाँट फटकार क्या होती है । एकबार पिता श्री नानक चन्द सरकारी कागजों को देख रहे थे, तथा उन पर आदेश लिख रहे थे । इतने में बालक मुंशीराम ने किसी कारण वश वहाँ पर उधम मचाना शुरु कर दिया । पिताजी ने समझाया, झिड़का और धमकाया । जो बेटा लाड़ प्यार में पला था, जिसकी स्वच्छन्दता पर कभी किसी ने उंगली न उठाई थी, वह इस झिड़की को कैसे सहन करता? लाड़ले बेटे ने सीढ़ियों में जाकर रस्सी को गले में डालकर और श्वास रोक कर फॉसी लगाने की धमकी दी । पिताजी ने उठकर जोर से चपत मारी और रस्सी से छुड़ा लाए । आठ-नौ वर्ष के लाड़ले ने भूमि पर लोट-पोट होकर रोना शुरु कर दिया । उन्होंने अपने आत्मचरित 'कल्याण मार्ग का पथिक' में लिखा है--'रोते रोते घिग्घी बँध गई । माताजी ने बाहर से आकर गोद में ले लिया । जो सुख उस समय मिला उसका वर्णन कोई कवि ही कर सकता है ।' बालक मुंशीराम का विरोध प्रकट करने का संस्कार आगे चलकर सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों के सत्याग्रह की आधार भूमि बना ।

शिक्षा का आरंभ

बनारस आने के बाद भी मुंशीराम की पढ़ाई प्रारंभ नही हुई थी । पर वे कुशाग्र बुद्धि एवं प्रतिभा संपन्न थे । अपनी स्मरण शक्ति के बल पर उन्होंने पिता जी और माता जी के मुख से बार बार उच्चारित किए जाने वाले 'काशी माहात्म्य', हनुमान चालीसा' 'विष्णु सहस्र नाम' तथा अन्य अनेक स्रोत कण्ठस्थ कर लिए थे । बनारस में आने के कुछ समय पश्चात् पिताजी ने बालकों को पढ़ाने के लिए एक हिन्दी अध्यापक को लगा दिया, जो घर पर आकर उन्हें पढ़ाया करता था । शीघ्र ही पिताजी ने यह सोचकर कि इस शिक्षा से कुछ लाभ नही हो रहा है, उन्होंने बच्चों को एक पाठशाला में भर्ती करा दिया । मुंशीराम की नियमित शिक्षा यहीं से प्रारंभ हुई । बड़े भाईयों की शिक्षा तो बरेली और बदायूं में प्रारंभ हो चुकी थी, परन्तु हिन्दी शिक्षण तीनों बालकों का यहीं से प्रारंभ किया । पहले दोनों ने

थोड़ी बहुत फारसी अवश्य पढ़ी थी ।

काशी में आने के बाद और शिक्षा आरंभ करने से पूर्व मुंशीराम का यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया । वैदिक धर्म में सोलह संस्कार कराने का नियम है । प्राचीन काल में वेदारंभ के समय यज्ञोपवीत संस्कार कराया जाता था । इसकी शिक्षा प्रारंभ करने के साथ गहरा संबन्ध है । मुंशीराम का भी यह संस्कार हुआ । पड़ोस की एक लड़की को बहन बनाया गया और मुंशीराम से कहलाया गया कि 'मैं' कश्मीर पढ़ने के लिए जा रहा हूँ ।' उस थोड़ी सी देर की बहन ने इतनी दूर जाने से मना किया और प्रथानुसार कहा गया कि पढ़ाई का प्रबंध यहीं पर कर दिया जाएगा । मुंशीराम को यह झूठा नाटक पसन्द न आया । महान पुरुषों को छोटी छोटी बातें ही कचोट जाती है आगे चलकर मुंशीराम ने इन धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध किया तथा सत्यमार्ग का अवलम्बन किया । जिन परिस्थितियों को साधारण व्यक्ति बिना सोचे समझे गुजार देते हैं, महान् पुरुष उन्हीं परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो जाते हैं । यह चिन्तन ही महान पुरुषों के लिए उच्च जीवन की सीढ़ी होता है ।

धार्मिक जीवन की ओर

मुंशीराम पाठशाला का काम पाठशाला में ही पूरा कर लेते थे । घर आकर पिता जी की तुलसी कृत रामायण का पाठ करते । यद्यपि लाला नानक चन्द इतने ऊंचे पद पर पहुँच गए थे, परन्तु वह अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार पूजा पाठ नियमित किया करते थे । वे प्रतिदिन शिव पूजा किया करते थे । पिता को इतने मनोयोग से पूजा करते देखकर मुंशीराम और उनके भाइयों को भी पूजा करने की सूझी । बच्चे स्वभाव से ही अनुकरण करने के अभ्यस्त होते हैं । वे एक टूटे फूटे मन्दिर में से एक शिवलिंग उठा लाए और पिता जी के समान ही उन्होंने इस पर जल चढ़ाया । धूप-दीप, नैवेद्य और पत्र-पुष्प से उसकी विधिवत् पूजा की । इस प्रकार मुंशीराम के जीवन का सांचा धार्मिक भावों से तैयार होने लगा । धार्मिक पिता का पुत्र धार्मिकता के मार्ग पर बढ़ चला ।

एक विचित्र जादूगर

काशी में एक बार बड़ा शोर मचा कि काशी में एक विचित्र जादूगर आया है । उसके दोनों ओर दो मशालें जलती हैं । जो भी उसके पास जाता है , वह उसे अपने जादू से अपना

चेला बना लेता है । मुंशीराम की माता जी ने भी यह शोर सुना और उसने अपने बालकों को घर से बाहर न जाने दिया । उसे पता न था कि वह जिस जादूगर से डर रही है, एक दिन वही जादूगर उसके बेटे के जीवन में प्रकाश लाएगा । वही उसके भावी जीवन को तैयार करेगा और एक दिन बालक मुंशीराम, महात्मा मुंशीराम की सीढ़ी को पार करता हुआ मृत्युञ्जय श्रद्धानन्द बनेगा । भोली माता को यह पता होता, तो वह उस जादूगर की पूजा करती । यह जादूगर 'क्रान्तिकारी दयानन्द' था । वह अत्यधिक तेजस्वी थे । उनकी मुखाकृति से एक प्रकार के प्रकाश का भान होता था । उनका व्याख्यान सरल और युक्ति युक्त होता था और श्रोताओं के ऊपर जादू का सा असर छोड़ता था ।

बुद्धू भगत की रामायण

काशी से डेढ़ वर्ष बाद लाला नानक चन्द का स्थानान्तरण बाँदा हो गया । मुंशीराम यहाँ आकर बीमार हो गए । डाक्टरों और हकीमों की दवा बेअसर हो गई । लोगों ने कहा कि इस बालक को बुद्धू भगत को दिखाओ । बुद्धू भगत को बुलाया गया और उनकी दवा से मुंशीराम नीरोग हो गए । स्वाभाविक ही था कि लाला जी का बुद्धू भगत से निकट और घनिष्ठ परिचय हो गया । पता लगा कि बुद्धू भगत बहुत ही ज्यादा मुकदमेबाज थे । एक बार उन्होंने रामायण सुनी और वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सभी चालबाजियाँ छोड़ दीं । कोड़ियों की दुकान कर ली और सब को बिना मूल्य दवा देने लगे । अब बुद्धू भगत स्वयं भी रामायण की कथा कहने लगे । इस कथा में सभी जातियों के लोग सम्मिलित होते थे । यहाँ पर ऊंच नीच का कोई भेदभाव नहीं था । लाला नानक चन्द भी अपने परिवार के साथ रामायण कथा सुनने बुद्धू भगत के स्थान पर जाया करते थे । बहुत से सरकारी कर्मचारी भी लाला नानक चन्द की प्रेरणा से रामायण की कथा सुनने के लिए वहां पर जाने लगे । कुछ अपराधियों पर भी बुद्धू भगत की रामायण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपराध करने छोड़ दिए । मुंशीराम के ऊपर भी बुद्धू भगत का गहरा प्रभाव पड़ा । बनारस में रहते हुए उनके मन में रामायण के प्रति अनुराग तो हो गया, वह यहाँ पर और भी ज्यादा तीव्र हो गया । वे शनिवार को स्कूल से लौटने पर रामायण का पाठ आरंभ कर के रविवार की रात्रि तक उसे पूरा कर देते । प्रति रविवार एक टांग पर खड़े होकर 'हनुमान चालीसा' का पाठ करने के बाद ही वह भोजन करते । लाला नानक चन्द तीन वर्ष बाँदा में रहे और मुंशीराम का यह धार्मिक प्रेम इसी प्रकार चलता रहा ।

चित्रकूट की यात्रा और संदेह का अंकुर

एक बार लाला नानक चन्द सपरिवार चित्रकूट की यात्रा पर गए । वहाँ पर चट्टान है, जो 'लक्ष्मण यती की पहाड़ी' नाम से प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि लक्ष्मण ने यहां पर बारह वर्ष तक तपस्या की थी और अपने धनुषवाण आदि शस्त्र भी उसी पर रक्खा करते थे । अभी तक उस पर धनुष बाण का चिन्ह बना हुआ था । एक यूरोपियन के पूछने पर पण्डो ने कहा कि यह निशान नीचे तक सारी भूमि में है । यूरोपियन ने ५००/- का इनाम देने का वचन दिया और खुदाई आरंभ हुई । खुदाई करने पर ६ फीट से आगे कोई निशान न मिला । इस ६ फीट में भी मिट्टी की तह पर तह जमाकर भोली जनता को ठगने और पैसा बटोरने का जाल रचा गया था । पण्डे बहुत ही लज्जित हुए । उदार अंग्रेज ने फिर भी कुल ५० रुपये दे दिए । लाला नानक चन्द के विश्वास में तो शायद कोई फर्क न पड़ा हो, पर जिज्ञासु बालक मुंशीराम के हृदय में संदेह के अंकुर पैदा हो गए ।

संवत् १९२८ में लाला नानक चन्द की बदली मिर्जापुर हो गई । यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र के नवरात्र में विंध्यावासिनी देवी का मेला लगता था । मेले के प्रबन्ध के लिए लाला नानक चन्द वहाँ गए । मुंशीराम भी वहॉ गए । वहाँ की दो घटनाओं ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया । उन्होंने अपने जीवन चरित में स्वयं लिखाा है --'उसी स्थान में पिता जी के अर्दली सार्जेन्ट जोखू मिस्सर की लीला देखी । देवी पर जो बकरे चढ़ते उनमें से सात की सिरियें मिस्सिर जी की पेट पूजा के लिए आती । सात बकरों के सिर मुफ्त, कण्डों की आग मुफ्त , मिट्टी की हंडिया मुफ्त, नमक व हल्दी भी मुफ्त । हां पावभर चून (आटा) मोल लेना पड़ता । जोखू मिस्सर जितने लम्बे उतने ही चौड़े थे । सातों सिरियों का सफाया करके शेष थाली चून की लिट्टी (बाटी) से पोंछ और कुल्ला करके पेट की तुम्बी पर हाथ फेर दिया करते थे । एक दिन हंडिया पकाते पकाते पिताजी का नौकर चिमटे से चिलम में आग धर लाया । मिस्सर जी आग बबूला हो गए और जब कारण पूछा गया तो बोले 'अरे सरकार' हम अपना धर्म कबहूँ नाही छोड़ा । अरे झूँठ बुआला , जुआ खेला, गांजा का दम लगावा, दारु चढ़ावा, रिसवत लिहा, चोरी दगाबाजी किहा, कौन फन फरेब बाटें जौन हम नाहीं किहा । मुल सरकार ! आपन धर्म नहीं छोड़ा । सरकार तो मुस्करा कर चल दिए और मेरे पेट में हँसते हँसते बल पड़ गए ।' निश्चय ही मुंशीराम के मन पर इस घटना ने ऐसा प्रभाव छोड़ा होगा , जो आगे चलकर अन्ध विश्वास के विरुद्ध आवाज उठाने में उनका सम्बल बनी ।

मुंशीराम के सामने यहाँ पर एक और घटना घटी । ज्यों ही मुंशीराम ने थाने की छत पर चढ़कर इधर-उधर देखा, उनकी दृष्टि एक वाममार्गी राजा के डेरे की ओर पड़ी । वहाँ पर एक नंगी स्त्री की पूजा हो रही थी । मुंशीराम को यह बड़ा बुरा लगा 'उस दृश्य ने मुझे ऐसे धनाढ्य पुरुषों से घृणा कर दी ।' मुंशीराम की शिक्षा तो नियमित नहीं हुई थी, परन्तु जगह जगह घूमने से उनके अनुभव में वृद्धि हो रही थी । इस प्रकार के अनुभवों ने आगे चलकर उन्हें सफल नेता बनने में बड़ी सहायता दी । मुंशीराम के जीवन में इस प्रकार अनेक उतार चढ़ाव आए, फिर भी अनुभव कभी व्यर्थ नहीं जाते ।

बनारस में दूसरी बार

देवी के मेले से लौटने पर मुंशीराम को गवर्नमेंट स्कूल की कक्षा तीन में भरती कराया गया । अब उर्दू,फारसी के अतिरिक्त अरबी का अभ्यास भी शुरु हो गया था, पर शीघ्र ही लाला नानक चन्द का स्थानान्तरण पुनः बनारस में हो गया । इस बार वे शहर कोतवाल बनकर बनारस आए । यहाँ के अमीर लोग शहर कोतवाल को प्रसन्न करने के लिए अच्छी अच्छी वस्तुएँ भेंट किया करते थे । कोतवाल के दरवाजे पर हर समय रईसों की गाड़ियाँ खड़ी रहती थी । मुंशीराम और उनके भाइयों को प्रतिदिन नए नए मेलों में जाने के अतिरिक्त कोई कार्य न था । गाने बजाने और नाच -रंग का चारों और दौर-दौरा था । पाँच छः महीने बीतने के बाद चौथी श्रेणी में मुंशीराम का दाखिला कराया गया । स्कूल में प्रविष्ट कराने के बाद भी अवारागर्दी जारी रही ।

काशी में रहते हुए प्रातः गंगा स्नान और विश्वनाथ आदि मंदिरों के दर्शनों के साथ साथ व्यायाम का भी मुंशीराम को व्यसन सा हो गया था । वे प्रतिदिन बायें हाथ में डलिया, दायें में झारी और बगल में धोती, अंगोछा लेकर निकल पड़ते । अखाड़े में जाकर लंगोट कस लेते, कुछ दण्ड बैठक करके कुश्ती लड़ते और पसीना सुखा कर गंगा में स्नान करते । लौटते हुए मार्ग के सभी शिवालयों पर पानी चढ़ाते और विश्वनाथ आदि की विधिपूर्वक बड़ी श्रद्धा से पूजा करते । यह क्रम बिना किसी व्यवधान के काफी समय तक चलता रहा ।

संवत् १९२९ में लाला नानक चन्द का स्थानान्तरण बलिया में हो गया । यहाँ पर भी मुंशीराम की पढ़ाई वैसी ही रहती यदि स्कूल के हैडमास्टर बाबू मुखर्जी ने स्वयं लाला नानक चन्द के पास जाकर मुंशीराम की पढ़ाई की बात न की होती । उन्होंने मुंशीराम को

अपने स्कूल में दाखिल कर लिया । यहाँ पर उनकी अंग्रेजी की पढ़ाई भी शुरु हो गई । मुंशीराम के अंग्रेजी अभ्यास से सन्तुष्ट होकर एक अंग्रेज कमिश्नर ने उन्हें पारितोषिक दिया और राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई इन्स्पैक्टर ऑफ स्कूल्स ने परीक्षा लेकर एक दर्जे की विशेष उन्नति दी । यहाँ अध्ययन के अतिरिक्त कुश्ती लड़ने, गतका खेलने और लाठी चलाने की भी शिक्षा प्राप्त की । उनके दिल में भ्रमण के लिए भी विशेष रुचि उत्पन्न हो गई ।

नियमित शिक्षा और स्वतंत्र जीवन

मुंशीराम की पढ़ाई तो अवश्य प्रारंभ हो गई थी, परन्तु लाला नानक चन्द इससे सन्तुष्ट न थे । उन्होंने देखा कि बालक मुंशीराम कुशाग्र बुद्धि एवं मेधावी है अतः उसकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए । अब वह इतना स्याना भी हो गया था कि उन्हें अकेला छोड़ा जा सकता । इसलिए बहुत सोच विचार के बाद उस समय संयुक्त प्रान्त के सुप्रसिद्ध विद्यालय 'क्वीन्स कॉलेज' के स्कूल विभाग में इन्हें प्रविष्ट कराया गया । यहाँ साढ़े चार वर्ष मुंशीराम ने विद्यार्थी अवस्था के व्यतीत किए । इण्ट्रेंस की परीक्षा के लिए इन्होंने पूरी तैयारी की, परन्तु एक आकस्मिक घटना के कारण सफलता नहीं मिली । पिताजी का पत्र आ चुका था कि परीक्षा सम। गेते ही, माता जी के पास तलवन पहुँच जाना । वहाँ सगाई की रस्म होगी मुंशीराम का संबन्ध जालंधर के रईस राय शालिग्राम की पुत्री से निश्चित हो चुका था । परीक्षा बृहस्पति वार को समाप्त होनी थी । उन्होंने शुक्रवार को तलवन जाने का कार्यक्रम बना लिया । बृहस्पतिवार को परीक्षा भवन में घोषणा हुई कि अंग्रेजी का पर्चा पुनः सोमवार को होगा क्योंकि वह पर्चा आउट हो गया था, पर मुंशीराम तो माताजी मिलने के लिए आतुर थे । अतः शुक्रवार को ही काशी से प्रस्थान करके रविवार को वे तलवन माता जी के पास पहुँच गए । अंग्रेजी की परीक्षा न देने के कारण उनका अनुतीर्ण होना निश्चित था । वही हुआ । गांव में दस पन्द्रह दिन ठहरकर बलिया होकर मुंशीराम फिर बनारस पहुँच गए । परन्तु बनारस में उनका स्कूल में मन न लगा क्योंकि स्कूल में उनके सभी सहपाठी ऊंची कक्षाओं में पहुँच गए थे । उधर इण्ट्रेंस की सभी पुस्तकें पढ़ी हुई थी । उन्हें दुबारा पढ़ने की इच्छा नहीं हुई । कबाडियों के यहाँ से अंग्रेजी के उपन्यास लाकर पढ़ने प्रारंभ कर दिए । पिता जी को कुछ पता ही न था । छुट्टियों के दिन आए तो कबाडियों के यहाँ से उपन्यास और नाटकों की अनेक किताबें लेकर वे बलिया

चले गए । उपन्यासों का ऐसा चस्का लगा कि गर्मी और पतंगों से बचने के लिए मुंशीराम ने छत पर चन्द्रमा के प्रकाश में पढ़ना शुरु कर दिया । पिताजी सोचते कि पुत्र पढ़ाई कर रहा है परन्तु उन्हें क्या पता था कि बालक पतन के गहरे गड्ढे में गिर रहा है ।

छुट्टियाँ समाप्त करके मुंशीराम पुनः काशी लौट आए । उन्होंने स्कूल में प्रविष्ट होने का विचार किया, परन्तु निर्णय लेने में ही अक्तूबर पूरा हो गया । दशहरा और दीपावली के पर्व आगए और मुंशीराम की आवारागर्दी और भी ज्यादा बढ़ गई । इन्हीं दिनों पिताजी किसी सरकारी काम से बनारस आए । पिताजी ने बैठक में बैठे हुए बेटे से पूछ लिया कि स्कूल कब जाओगे । बेटे ने कह दिया कि आज स्कूल में छुट्टी है । मुशीराम का संभवतः यह पहला झूठ था । सायंकाल सरकारी काम से लौटते हुए स्कूल के बच्चों से ज्ञात हुआ कि मुंशीराम का नाम स्कूल से कट चुका है । इतना सुनते ही पिताजी को जबर्दस्त आघात लगा । घर आकर उन्होंने मुंशीराम के सिर पर हाथ फेरकर कहा-'बेटा, मैं तो तुम पर विश्वास करूँ और तुम ऐसा विश्वासघात करो । यदि तुम्हारा मन न लगाता था, तो मुझे लिख दिया होता ।' पिताजी के इस अगाध प्रेम से मुंशीराम का हृदय द्रवित हो उठा । जीवन में प्रथम असत्य भाषण पर उन्हें ग्लानि हुई । उनके मन में अनेक उतार चढ़ाव आए । वे रात भर सो न सके । सुबह उठकर उन्होंने पिताजी के पैर पकड़ कर क्षमा मांगी और प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वे कभी असत्य भाषण न करेंगे । पिताजी ने मुंशीराम को पुनः स्कूल में प्रविष्ट करा दिया । परीक्षा में केवल एक महीना शेष था । इधर उन्हें कोई भी विषय आता ही नहीं था । ऐसी स्थिति में अनुतीर्ण होना निश्चित था । अतः स्कूल से नाम कटवा लिया और इस प्रकार दूसरा वर्ष भी बरबाद हो गया । इस बार वे रेवड़ी तालाब के स्कूल में प्रविष्ट हुए । अंग्रेजी में उनकी योग्यता असाधारण थी । अन्य विषयों का भी उन्होंने गहरा अध्ययन किया । मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने द्वितीय श्रेणी में पास की । एण्ट्रेंस पास करते करते उनकी माता का देहान्त हो गया और मुंशीराम सदा के लिए मातृ स्नेह से वंचित हो गए ।

आश्विन के दूसरे सप्ताह में भाई मूलराज माता जी की बीमारी का तार पाकर बलिया जाते हुए बनारस आए । उसी दिन शाम को चार बजे मुंशीराम के नाम माताजी की मृत्यु का समाचार आ गया । मृत्यु का समाचार पाते हुए माँ का लाड़ला ज्ञान विमूढ़ हो गया । मुंशीराम अपने भाई के साथ पिताजी के पास आए और क्रिया कर्म आदि के बाद मुंशीराम पुनः बनारस लौट आए ।

मूर्त्ति पूजा में अश्रद्धा

मुंशीराम प्रतिदिन देव मंदिरों में पूजा-अर्चना और दर्शन के लिए जाया करते थे । एक दिन उन्हें किसी कारण देर हो गई । असमय हो चला था परन्तु मुंशीराम की श्रद्धा तो पक्की थी । वे विश्वनाथ के मंदिर की ओर चल पड़े । दरवाजे पर द्वारपाल ने यह कह कर रोक दिया कि रीवाँ की महारानी दर्शन कर रही हैं । उनके जाने के बाद ही मंदिर का द्वार खुलेगा । मुंशीराम यह सुनकर स्तब्ध रह गए । उनके भक्ति भाव को ठेस लगी । वे सोचने लगे 'विश्वनाथ भगवान के दरबार में यह अनुचित भेदभाव कैसा? वहाँ तो भक्ति का आदर होना चाहिए ।' मुंशीराम के अन्ध श्रद्धाभक्ति के विशाल पर्वत में भूकम्प आ गया । उन्होंने मन को बहुत समझाया पर सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए और मूर्त्ति पूजा से उनकी श्रद्धा उठ गई ।

ईसाई होने से बचे

मूर्त्ति पूजा से विश्वास उठ जाने पर उनकी प्रवृत्ति ईसाई मत की ओर हुई । दूसरे दिन खेड़ी तालाब स्कूल - जय नारायण कॉलेज के प्रिंसिपल ल्यूथेल्ट से उन्होंने मूर्त्ति पूजा के सम्बन्ध में बात की । परन्तु जिज्ञासु मन की आशंकाओं को उनकी युक्तियां शान्त न कर सकी । अपनी जिज्ञासा को शान्त करने की इच्छा से वे रोमन कैथोलिक पादरी लिफ़ूं से मिले । उनके शान्त और विनयशील स्वभाव ने मुंशीराम को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया । मुंशीराम उनसे इतने प्रभावित हुए कि बपतिस्मा लेने के लिए तैयार हो गए । एक दिन बपतिस्मा लेने की तिथि निश्चित करने के लिए वे लीफ़ूं के पास गए । जब उन्होंने कमरे का पर्दा उठाया तो उन्हें लीफ़ूं साहब तो दिखाई न दिए परन्तु अन्दर के कमरे में एक अन्य पादरी और एक नन (ईसाई ब्रह्मचारिणी) को अत्यन्त घृणित अवस्था में पड़े देखा । बस मुंशीराम को ईसाईयों से भी घृणा हो गई । इस प्रकार ईसाईयों से भी निराश होकर, मुंशीराम नास्तिकता की ओर झुके । उनकी किसी भी प्रकार के धर्म में श्रद्धा न रही । धर्म उन्हें 'माया जाल' के अतिरिक्त कुछ न लगा । उन्होंने पूजा पाठ बिल्कुल बन्द कर दिया । उनका स्नान और व्यायाम का अभ्यास पूर्ववत् चलता रहा, परन्तु स्नानादि में धार्मिक अथवा भक्ति की भावना न थी ।

संवत् १६३२ में मुंशीराम क्वीन्स कॉलेज में प्रविष्ट हुए । उन्होंने एफ० ए० की

पहली वर्ष की परीक्षा बड़ी सफलता के साथ उत्तीर्ण की । अंग्रेजी में उन्होंने ८७ प्रतिशत अंक प्राप्त किए । अध्ययन के साथ मुंशीराम कविता आदि में भी रस लेते थे । प्रति रविवार उनके घर पर कवि सम्मेलन लगता था । स्वनामधन्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से भी उनका परिचय हो गया था । कुछ समय बाद उनके पिता की बदली मथुरा हो गई । उन्होंने मथुरा में भी मन्दिरों में जो कुछ देखा, उससे उनके मन में सनातन धर्म के प्रति वितृष्णा हो गई।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश

ज्येष्ट १६३४ के अन्त में पिताजी ने मुंशीराम को विवाह के लिए घर बुला लिया। मथुरा होते हुए मुंशीराम तलवन पहुँचे । यहाँ राय सालिगराम जी रईस जालंधर की सुपुत्री से उनका विवाह हुआ । मुंशीराम की माताजी ने मरने से दो घण्टा पूर्व अपनी अन्तिम इच्छा निम्न शब्दों में व्यक्त की थी 'एक ही इच्छा मन में रह गई । अपने मुंशीराम का विवाह अपने हाथों से करती । आप भूलना मत । मेरे प्यारे बच्चे का विवाह उसी हौसले से करना जैसा मैं करना चाहती थी । मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब मेरा बच्चा वकील बनेगा और मैं अपनी पुत्रवधू सहित उसका ऐश्वर्य देखूंगी । अच्छा भगवान की यही इच्छा है तो यही सही ।' माताजी की अन्तिम इच्छा के अनुसार विवाह बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ । अपनी भावी पत्नी के विषय में मुंशीराम ने जो कल्पनाएं की थी, अपनी पत्नी के साथ आनन्दमय भावी जीवन के जो सुनहरे स्वप्न देखें थे, वे सब मृगमरीचिका ही सिद्ध हुए। मुंशीराम अपने विवाह के धूमधड़ाके से निवृत्त होकर बहुत निराश हुए उन्होंने समझा था कि वधू युवा होगी, परन्तु वह तो अभी बाल्यावस्था में थी । फिर उन्होंने सोचा कि वे स्वयं उसे पढ़ायेंगे और इसी विचार ने उन्हें बहुत सन्तोष दिया । मुंशीराम के मन के ये विचार, आगामी जीवन में उनके बालविवाह विरोधी आन्दोलन के लिए सहायक बने । उन्होंने स्त्री शिक्षा की बात भी उसी समय सोच ली होगी ।

बरेली में वापसी

मुंशीराम के पिता का स्थानान्तरण पुनः बरेली में हो गया । पिता ने मोहवश पुत्र को भी अपने पास बुला लिया । उन्होंने यह भी न सोचा कि इससे मुंशीराम के शैक्षिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा । बाद में वह 'म्योर सैंण्ट्रल कॉलेज इलाहाबाद' में प्रविष्ट हुए । यहाँ पर उनकी रुचि रसायन और मनोविज्ञान में अधिक हुई । मनोविज्ञान में तो

उनका मन इतना लगता था कि गर्मियों की छुट्टियों में भी वे इसी में डूबे रहे । मूलराज और आत्माराम (मुंशीराम के भाई जो हमीरपुर और मिर्जापुर में थानेदार थे) के पास गए तो वहाँ भी मुंशीराम बराबर मनोविज्ञान की पुस्तक पढ़ते रहे । एक ही विषय की ओर ज्यादा ध्यान देने के कारण, वे अपनी अन्य विषयों की पढ़ाई में पिछड़ गए । परीक्षा के दिनों में ज्यादा परिश्रम करने के कारण, उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया । तर्कशास्त्र के पत्र का उत्तर देते समय उन्हें बुखार हो आया । अन्य विषयों में ७० प्रतिशत अंक पाने पर भी वे परीक्षा में असफल हुए । कुछ दिन के लिए उनकी पढ़ाई बन्द हो गई । इन दिनों मुंशीराम के पिता नानक चन्द बरेली में शहर कोतवाल बन चुके थे । बरेली में रहते हुए मुंशीराम के जीवन में भी अनेक बुराइयाँ आ गई थीं ।

आर्य समाज

मुंशीराम के जीवन में ज्योति की किरण

१४ श्रावण संवत् १६३६ के दिन बरेली में क्रान्ति के अग्रदूत, नैष्टिक ब्रह्मचारी, वेदोद्धारक, समाज सुधारक, नवयुग निर्माता, आर्यसभ्यता और संस्कृति के उन्नायक, अगाध पांडित्य और अलौकिक तर्क शक्ति संपन्न, ओजस्वी वक्तृत्व शक्ति के स्वामी, सैकड़ों हजारों की कायाकल्प करने वाले ऋषिवर दयानन्द का आगमन हुआ । लाला नानक चन्द को आदेश मिला कि वे महर्षि दयानन्द के व्याख्यानों में कोई उपद्रव न हो, इसकी समुचित व्यवस्था करें । लाला नानक चन्द्र ऋषिवर के प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने मुंशीराम को कहा कि 'शहर में एक दण्डी सन्यासी आये हैं । वे बड़े विद्वान और योगीराज हैं । उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे सभी संशय मिट जाएंगे । कल तुम मेरे साथ चलना ।' मुंशीराम का श्रद्धा और विश्वास धार्मिक स्थानों के अत्याचार देखकर टूट चुका था । बनारस के पंडित के कुकृत्य के कारण उन्हें संस्कृतज्ञ पंडितों से भी घृणा सी हो गई थी , परन्तु मुंशीराम ने कुछ सोचकर चलने के लिए हाँ कर दी ।

अगले दिन मुंशीराम अपने पिता के साथ बेगम बाग की कोठी में पहुँचे जहाँ महर्षि के व्याख्यान हो रहे थे । महर्षि की भव्य और दिव्यमूर्त्ति ने मुंशीराम के मंन-मस्तिष्क को भावभिभूत कर लिया । वहाँ पर पादरी स्कॉट और कई अन्य यूरोपियन भी बैठे हुए थे । मुंशीराम के मन में ऋषिवर के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई । मुंशीराम ने दत्तचित्त होकर ऋषि का 'ओ३म' पर व्याख्यान सुना । सुनते ही मन में ईश्वर भक्ति का अनुराग जाग उठा । वे सोचने लगे कि कैसा विलक्षण व्यक्ति है । केवल संस्कृतज्ञ होते हुए भी कैसे युक्ति युक्त और विज्ञान सम्मत बातें कहता है । व्याख्यान के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है --'वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता । नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना किसी ऋषि आत्मा का ही काम था ।' स्वार्थी मन्दिर कर्मचारियों, आचारहीन गुसांई जी, भोजन भट्ट चौबों और अनाचारी पादरी--सभी ने मुंशीराम को सभी धर्मो से निराश कर दिया था । निराश मुंशीराम के हृदय में फिर से धार्मिक भावना का अजस्र स्रोत बह उठा ।

ऋषि दयानन्द के भाषणों का ऐसा विलक्षण जादू मुंशीराम पर हुआ कि वे प्रतिदिन

समय से पहले ही बेगम बाग की कोठी में पहुँच जाते । ऋषि का दरबार २ से ४ बजे तक लगता था । ऋषिवर दयानन्द को सबसे पहले नमस्ते करने वाले मुंशीराम ही होते । ऋषि दरबार में प्रश्नोत्तर होते रहते और मुंशीराम ध्यानावस्थित होकर सश्रद्ध मन से उनका आनन्द प्राप्त करते । वहाँ से व्याख्यान सुनने के लिए वे सीधे टाउनहाल पहुँच जाते । एक दिन सत्य का विषय आने पर स्वामी दयानन्द ने कहा--'लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा । अरे ! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे । यह शरीर तो अनित्य है, यह शरीर तो अनित्य है । इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है । इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे ।' इस निर्भीक उद्‌घोष का नास्तिक मुंशीराम पर विशेष प्रभाव पड़ा । मुंशीराम ने समय लेकर अपनी शंकाए ऋषिवर के सामने रखी । उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व पर भी आक्षेप कर डाले । पाँच मिनट के प्रश्नोत्तर में ही मुंशीराम ऐसे घिर गये कि जिह्वा पर मुहर लग गई । मुंशीराम ने कहा--'महाराज, आपकी तर्कना शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है । आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है ।' मुंशीराम पुनः ऋषिवर के पास गए परन्तु उनके तर्क को पुनः पराजय मिली । इस बार फिर उन्होंने यही कहा--'महाराज, आपकी तर्कना शक्ति बड़ी प्रबल है । आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की काई हस्ती है ।" महाराज पहले हंसे फिर गंभीर स्वर से कहा, देखो तुमने प्रश्न किए, मैने उत्तर दिये- यह युक्ति की बात थी । मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूंगा । तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा, जब वह प्रभु तुम्हें विश्वासी बना देंगे । उस समय उन्होंने यह उपनिषद वाक्य भी बोला था--'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तत्यैष आत्मा विवृणुते त नूस्वाम् ।। (कठ १/२/२२)

पतिव्रता पत्नी का सहयोग

महर्षि दयानन्द के सत्संग से मुंशीराम कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर हुए । इसमें सन्देह नहीं, परन्तु उनकी धर्म परायणी एवं पतिव्रता पत्नी ने भी उन्हें ऊपर उठाने में अपूर्व सहयोग दिया । उनकी धर्मपत्नी शिवदेवी शिक्षित नहीं थी, परन्तु आर्यसंस्कृति और पतिभक्ति की पवित्र भावनाएं उनमे कूट-कूट कर भरी थी । उन्होंने पति के हृदय में भारतीय स्त्रियों की उच्चता का आदर्श स्थापित किया । उनके हृदय में स्त्रियों के लिए भारी मान पैदा करने का सर्वप्रथम श्रेय उन्हीं देवी को है ।

यदा धर्मश्च भार्या च परस्पर वशान्दुगौ ।
तदा धर्मार्थ कामानां त्रयाणामपि संगमः ।।

(महाभारत)

जब धर्म और पतिव्रता पत्नी एक दूसरे के साथ सहमत होते हैं तथा परस्पर वश में रहते हैं, तब धर्म अर्थ और काम तीनों का सह अस्तित्व संभव है । निश्चय ही जब पत्नी अपने पति को निरन्तर सत्य धर्म, अथोपार्जन तथा भद्र कामनाओं की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है, तभी अभ्युदय की स्थिति आती है । पत्नी इन तीनों महदुद्देश्यों की प्राप्ति में सम्यक् एवं आवश्यक भूमिका का निर्वहण करती है । शिवदेवी ने भी मुंशीराम के जीवन में इसी सद् भूमिका का निर्वहण किया था ।

पहली नौकरी से त्याग पत्र

मुंशीराम के दो भाई थानेदार थे । पिता जी ने सोचा कि ऊंची शिक्षा इसके भाग्य में नहीं है , अतः इसे कहीं पर नौकरी में लगा देना चाहिए । अतः उन्होंने बरेली के कमिश्नर एडवर्ड से मिलकर इन्हें स्थानापन्न तहसीलदार नियुक्त करा दिया । कुछ दिन बाद इन्हें स्थायी तहसीलदार की नौकरी पर लगा दिया गया । इस नौकरी से लाला नानक चन्द तो बहुत प्रसन्न थे, परन्तु कुछ ऐसा घटना वृत्त चला कि मुंशीराम का मन सरकारी नौकरी से फिर गया । बरेली से आठ दस मिल दूरी पर अंग्रेजी फौज ने अपना पड़ाव डाला । रसद आदि पहुँचाने का काम मुंशीराम को सौंपा गया । मुंशीराम ने सामान भेजने का प्रबन्ध किया और बाद में वहीं पर कुछ लोगों की दुकानें खुलवादी, जो वहीं पर आवश्यकता का सारा सामान रखने लगे । वहाँ फौज के गौरों ने एक दुकानदार से बिना मूल्य चुकाए अण्डे छीन लिए । मुंशीराम को पता लगा तो उन्होंने कर्नल से इसकी शिकायत की और कहा कि यदि दुकानदार के पैसे न चुकाए गए तो मैं सभी दुकानदारों को वापिस बुला लूँगा । कर्नल साहब भड़क उठे और बोले कि यदि ऐसा करोगे तो नुकसान उठाओगे ।' मुंशीराम ऐसी धमकियों से कहाँ डरने वाले थे । वे कड़क कर बोले --'मैं अपने आदमियों को ले जा रहा हूँ । आप जो करना चाहें, कर लें । मैं यह अपमान सहन नहीं कर सकता ।' कर्नल आगे बढ़ा और मुंशीराम ने अपना हण्टर संभाला । कर्नल तनिक रुका तो मुंशीराम ने रकाब पर पैर रखकर, अपने सब आदमियों को लौटने का आदेश देकर, घोड़े को एड़ लगा

दी । इस घटना से पता लगता है कि मुंशीराम में निर्भयता, वीरता और स्पष्टवादिता कूट कूट कर भरी हुई थी ।

बाद में मुंशीराम को कलक्टर ने कहा कि वे कर्नल से मांफी मांग लें । इस अपमान ने उन्हें और ज्यादा उद्वेलित कर दिया । उन्होंने सारा घटनाक्रम कमिश्नर को बताया और नौकरी से त्याग पत्र देना चाहा । कमिश्नर ने सावधानी से स्थिति को संभाला । मुंशीराम ने त्याग पत्र दिया और अगले तहसीलदार को चार्ज देकर सदा के लिए सरकारी नौकरी से छुट्टी ले ली ।

वकालत का अध्ययन

मुंशीराम के पिताजी सब डिवीजनल आफीसर बनाकर खुर्जा भेज दिए गए । मुंशीराम भी वहीं पहुँच गए और तहसीलदारी से बचाए २०० रु० पिताजी को भेंटकर दिए । पितृभक्ति के इस अनुपम उदाहरण से पिताजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । कमिश्नर सर माइकेल लाला नानकचन्द से बहुत प्रसन्न थे । किसी कार्य से वे खुर्जा आए और बोले कि मुंशीराम को हमें सौंप दो । हम उसे प्रारंभ से २०० रु० मासिक वेतन पर लगा देंगे । उस समय तो लाला नानक चन्द ने स्वीकार कर लिया परन्तु बाद में उनकी भेंट मेरठ में वकील श्री डूंगर मल से हुई । उनके परामर्श से उन्होंने मुंशीराम को वकालत का अध्ययन कराने का मन बना लिया । इस बात को जानकर मुंशीराम भी बहुत प्रसन्न हुए ।

संवत् १९३७ के पौष मास में मुंशीराम लाहौर पहुँचे और कानून की कक्षा में भरती हो गए । लाहौर में मुंशीराम का संबन्ध सभा-संस्थाओं से होना प्रारंभ हो गया । जिस मकान में रहते थे, उस मकान के पास ही सर्वहितकारिणी सभा का दफ्तर था । मुंशीराम का उसकी ओर कुछ आकर्षण हुआ । वे ब्रह्मसमाज के अधिवेशनों में भी जाने लगे । मुंशीराम केवल किताबों तक सीमित रहने वाले न थे । लाहौर में उनका झुकाव सभा-सोसाइटियों की ओर इतना हुआ कि परीक्षा के लिए आवश्यक तीन-चौथाई उपस्थिति पूरी न हो सकी । उनकी वकील बनने की अभिलाषा धूलि-धूसरित हो गई । परन्तु वीर योद्धा ने हार न मानी । पौष १९३८ में वे पुनः कानून की कक्षा में प्रविष्ट हुए । उपस्थिति ८० प्रतिशत कर लेने के बाद, यह सोचकर कि परीक्षा की तैयारी घर पर ज्यादा अच्छी होगी , वे तलवन चले गए । वहाँ शिक्षित मंडली का अभाव था । वे जालंधर अपनी ससुराल में रहने लगे । जालंधर में विशेष

समस्याओं के कारण परीक्षा की तैयारी करना असंभव समझकर वे पुनः लाहौर चले गए, परन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था । यहाँ पर कुछ ऐसे व्यसन उन्हें लग गए कि इस बार भी परीक्षा की तैयारी न हो सकी और वे अनुतीर्ण हो गए ।

अब मुंशीराम ने मुख्त्यारी की परीक्षा की तैयारी आरंभ की और वे पास हो गए । मुख्त्यार बन कर उन्होंने जालंधर में वकालत करना शुरू कर दिया । कुछ दिन बाद उन्हें पता चला कि विश्वविद्यालय के नियमों में कुछ परिवर्तन हुए हैं और अगले वर्ष से कोई भी व्यक्ति बिना बी० ए० पास किए वकालत की परीक्षा न दे सकेगा । मुंशीराम को तो वकील बनना था । वे पुनः लाहौर चले गए और मनयोग से वकालत पढ़ने लगे और इस बार वे वकालत में उत्तीर्ण हो गए ।

आर्य समाज में नियमित प्रवेश

पहले की तरह मुंशीराम आर्य समाज और ब्रह्मसमाज के अधिवेशनों में सम्मिलित होने लगे । ब्रह्मसमाज में श्री शिवनाथ शास्त्री के व्याख्यानों से वे बहुत प्रभावित हुए परन्तु, पुनर्जन्म के विषय पर वे उनसे सहमत न हो सके । इस संबन्ध में उन्होंने आर्य समाज का मत जानना चाहा । उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का आद्योपान्त अध्ययन किया । पुनर्जन्म के प्रकरण को पढ़कर उन्हें बड़ी शान्ति हुई । अब तो उनका झुकाव पूरी तरह आर्य समाज की ओर हो गया । वह युग आर्य समाज का स्वर्णिम युग था । संवत् १६४१ के माघ मास की एक प्रातः मुंशीराम के मित्र सुन्दर दास उनके पास पहुँचे । मुंशीराम सत्यार्थप्रकाश खोले, ठोड़ी पर हाथ लगाए किसी विचार में मग्न थे । सुन्दर दास ने आते ही पूछा--'किस चिन्ता में हो?' मुंशीराम ने कहा कि 'पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने फैसला कर दिया है । आज मैं आर्य समाज का सदस्य बन सकता हूँ ।' यह सुनकर सुन्दरदास का मुखमंडल खिल उठा । वे मुंशीराम को लेकर शाहे-ए-आलमी दरवाजे से नगर में प्रवेश करके आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचे और आर्य समाज के सबसे पहले मंत्री लाला सांईदास जी को अपनी सफलता की बात कह सुनाई । मुंशीराम आर्य समाज के विधिवत सदस्य बन गए । लाला जी ने मुंशीराम को अपने पास बुलाकर उनकी पीठ पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया ।

उस समय के सुप्रसिद्ध व्याख्याता भाई दत्तासिंह ने अपने रविवासरीय व्याख्यान के अन्त में मुंशीराम के आर्य समाज में प्रवेश का जिक्र किया । तत्कालीन मंत्री भाई जवाहर सिंह उठे और उन्होंने मुशीराम से कुछ बोलने के लिए कहा । मुंशीराम के उस समय के शब्द

थे --'हम सब के कर्त्तव्य और मन्तव्य एक होने चाहियें । जो वैदिक धर्म के एक एक सिद्धान्त के अनुकूल अपना जीवन नहीं ढाल लेगा उसे उपदेशक बनने का साहस नहीं करना चाहिए । भाड़े के टट्टुओं से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता, इस पवित्र कार्य के लिए स्वार्थत्यागी पुरुषों की आवश्यकता है ।

लाला सांई दास ने अपने घर पहुँचकर अमृतसर निवासी मास्टर हीरासिंह तथा अन्य कई आर्य समाजी मित्रों के सामने कहा था--'आर्य समाज में यह नई स्प्रिट (स्फूर्ति) आई है । देखें यह आर्य समाज को तारती है, या डुबोती है । लाला सांई दास में किसी मनुष्य के अन्तस्थल में झांक कर उसके व्यक्तित्व को परखने और उसे अपनी ओर आकर्षित करने की विलक्षण शक्ति थी । महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी और लाला लाजपतराय जैसे युवकों को आर्य समाज में लाने का श्रेय उन्हीं को है । मुंशीराम ने जो बात १०८ वर्ष पूर्व (सन् १८८४) में कही थी, आज की स्थिति में उस पर विचार करने की पहले से अधिक आवश्यकता है । जनता पर उपदेशों का प्रभाव इसलिए नहीं पड़ता क्योंकि उपदेशक आकण्ठ लोभ में डूबे हुए हैं ।

आर्यसमाज में प्रवेश करते ही, मुंशीराम ने अपने जीवन को वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल ढालना प्रारंभ कर दिया था । सत्यार्थ प्रकाश का नियमपूर्वक स्वाध्याय उनके सभी संशयों को मिटाता चला गया और दशम समुल्लास के भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण ने तो उनके जीवन में, सभी व्यसनों से छुड़ाकर और एक नई आभा प्रस्फुटित कर दी ।

आर्य समाज जालंधर में पहला व्याख्यान

आर्य समाज में प्रविष्ट होने के बाद, जालंधर के आर्य भाई मुंशीराम जी से मिलने और उनका व्याख्यान सुनने के लिए बहुत लालायित थे । लाला देवराज ने उनसे प्रार्थना की कि वे होली के अवसर पर जालंधर पधारें । वे यथासमय वहाँ पर पहुँच गए । आर्य समाज की ओर से उनके व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया । व्याख्यान का विषय था--'बाल विवाह के दोष और ब्रह्मचर्य का महत्व ।' व्याख्यान में शहर के सभी धनीमानी लोग मौजूद थे । व्याख्यान बहुत ही सफल रहा । उसके बाद वे परीक्षा की तैयारी के लिए लाहौर चले गए । लगभग तीन महीने के बाद वे पुनः प्रचारार्थ जालंधर आए । वहाँ पर उन्हे पिताजी की बीमारी का पता चला । वे तलवन गए । वहाँ योग्य चिकित्सकों से पिताजी की चिकित्सा कराई ।

धर्म संकट

जिस परिवार में अलग अलग धार्मिक सिद्धान्तों को मानने वाले लोग हों, वहाँ पर पिता-पुत्र और भाई-भाई में भी टकराहट हो जाना स्वाभाविक है । मुंशीराम के पिता कट्टर पौराणिक थे । वे नियमित रूप से ठाकुर जी की पूजा किया करते थे । मुंशीराम एक दृढ़ आर्य समाजी थे । एक दिन पिता पुत्र में ऐसे ही धार्मिक संघर्ष की घड़ी आ गई । एक दिन पिताजी मुंशीराम से बोले--'बेटा हमने तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा करके सबसे संकल्प पढ़वा लिया है । तुम भी संकल्प पढ लो तो मैं भी संकल्प पढ़कर निवृत्त हो जाऊं ।' मुंशीराम पिताजी के स्नेह भाजन थे । उन्होंने धीरे से कहा --'पिताजी संकल्प का संबन्ध तो दिल से है ।' जब आपने संकल्प किया है , तो आपका दान है , आप चाहे जिसे दे दें । इसी से मैंने आना ठीक नहीं समझा ।' पिताजी तो अवाक् रह गए । उन्हें ऐसे उत्तर की आशा न थी । उन्होंने पूछा-'क्या तुम्हें एकादशी और ब्राह्मण पूजा पर विश्वास नहीं ।' मुंशीराम ने धीरे स्वर में, परन्तु दृढ़ता के साथ उत्तर दिया--'ब्राह्मणत्व पर तो मुझे पूर्ण विश्वास है , किन्तु जिनको आप दान देना चाहते हैं, वे मेरी दृष्टि में ब्राह्मण नहीं हैं और एकादशी के दिन में भी मैं कुछ विशेषता नहीं समझता ।' मुंशीराम के पिता श्री नानक चन्द को पता लग चुका था कि मुंशीराम आर्यसमाजी हो गया है । वे दीर्घ निःश्वास लेकर बोले--'मैंने तो बड़ी आशा लेकर तुम्हें बड़ी सरकारी नौकरी से हटाकर वकालत की ओर डाला था । मुझे तुमसे बड़ी सेवा की आशा थी, क्या उस सब का फल मुझे यही मिलना था ? अच्छा जाओ ।'

मुंशीराम के हृदय में कई दिन तक उद्विग्नता छाई रही । धीरे-धीरे मन का अवसाद दूर हुआ, पर शीघ्र ही एक धर्म संकट पुनः आ उपस्थित हुआ छुट्टियों के प्रश्चात् लाहौर जाने की तैयारी करके मुंशीराम पिता जी से विदा मांगने गए । पिताजी के चरण स्पर्श कर आशीर्वाद ले ज्योंही वे चलने लगे, पिताजी ने कहा कि बेटा ठाकुर जी को माथा टेक जाओ ।' मुंशीराम का माथा ठनका । पिताजी के इस आदेश का पालन करना मुंशीराम के वश में न था । उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा--'पिताजी, मैं अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई कार्य कैसे कर सकता हू । हाँ, सांसारिक व्यवहार में आप जो आज्ञा दें, मैं करने के लिए तैयार हूँ ।' पिताजी ने क्रोध भरे स्वर में कहा--'क्या तुम हमारे ठाकुर जी को धातु पत्थर समझते हो ?' इस समय मुंशीराम के मन में घोर संग्राम हो रहा था, पर उन्होंने साहस करके कहा--'परमात्मा के प्रश्चात् मैं आपको ही समझता हूँ । किन्तु हे पिता ! क्या आप चाहते

हैं कि आपकी सन्तान मक्कार हो ?' ये शब्द करुणा विगलित थे । पिताजी का हृदय भी द्रवित हो उठा --'कौन पिता अपनी सन्तान को मक्कार देखना चाहता है?' मुंशीराम ने उस समय को जीवन रक्षा व मृत्यु प्राप्ति का समय समझा और दृढ़ता पूर्वक कहा--'तब मेरे लिए ये मूर्त्तियाँ इससे बढ़कर कुछ भी नहीं । और यदि मैं इनके सामने भेंट धर कर सिर झुकाऊंगा । तो वह मक्कारी होगी ।' इस पर पिताजी के हृदय वेधक शब्द थे--'हाँ, मुझे विश्वास नहीं कि मरने के पश्चात् कोई मुझे पानी भी देगा, अच्छा भगवान्, जो तेरी इच्छा ।' ये शब्द सुनकर मुंशीराम का हृदय स्तब्ध हो गया । सिद्धान्त भेद होते हुए भी पिताजी के उद्वेग और सन्देह को सहन करना मुंशीराम के लिए कठिन हो गया । उनके मुंह से एक भी शब्द न निकला । दस मिनट तक पिता-पुत्र दोनों चित्र-खचित से रह गए । फिर धीरे से पिता जी ही बोले-'अच्छा अब जाओं नहीं तो देर होगी ' मुंशीराम चुपचाप प्रणाम करके नीचे उतर गए ।

मार्ग में जाते जाते मुंशीराम ने सोचा कि यदि मैं पिताजी के धार्मिक विचारों से सहमत नहीं; उनके स्वर्ग प्राप्ति या मोक्ष का साधन नहीं बन सकता जिसके लिए उनके मतानुकूल मृतक शाद्ध या तर्पण आदि आवश्यक है, तब मुझे क्या अधिकार है कि उनके कमाए हुए धन में हिस्सेदार बनूं । यह विचार मन में आते ही मुंशीराम ने पिताजी द्वारा खर्च के लिए दिए हुए पचास रुपये एक पत्र के साथ, पिताजी को दूसरे दिन देने के लिए एक मित्र को दे दिए पत्र में लिखा था --'आपके मन्तव्यों के विरूद्ध मन रखने के कारण, मुझे आपके धन के उपभोग का कोई अधिकार नहीं है । जीवन शेष है तो आपके चरणों में अपनी भेंट रखूंगा ही ।' मित्र ने यह पत्र और रुपये पिता जी को दे दिए तो पिताजी ने उसी व्यक्ति को घोड़ी पर पीछे दौड़ाया और यह सन्देश मिजवाया कि 'तुम प्रतिज्ञा करके गए हो कि मेरी सांसारिक आज्ञाओं से मुख नहीं मोड़ोगे । यह मेरी सांसारिक आज्ञा है कि यह रुपया ले जाओ और बराबर व्यय के लिए रुपया मुझसे मांगते रहो ।' पिताजी के इस संदेश-आदेश ने मुंशीराम को अपने चित्त को व्यवस्थित करने में बड़ी सहायता दी ।

मुंशीराम की दृढ़ता और सत्याचरण का लाला नानकचन्द पर विशेष प्रभाव पड़ा । उन्होंने पडित काशीराम के सहयोग से पंच महायज्ञ विधि और सत्यार्थ प्रकाश पढ़े । उन्होंने कहा कि हम तो अब तक अविद्या में ही पड़े रहे, हमारी मुक्ति कैसे होगी ? हमने तो अब तक निरर्थक क्रियाएं ही की हैं । अब से वैदिक संध्या करेंगे ।' लाला नानक चन्द ने संध्या के मंत्र याद कर लिए और वे नियमित संध्या करने लगे ।

लाहौर में परीक्षा की तैयारी

आश्विन संवत् १६४२ के मध्य में (सितम्बर १८८५) मुंशीराम लाहौर पहुँचे और वकालत की परीक्षा की तैयारी फिर बड़े जोर शोर से कर दी । संवत् १६४२ (सन् १८८५) तक वकालत की परीक्षा मार्गशीर्ष के अन्त अर्थात् दिसम्बर के मध्य में हुआ करती थीं । उस वर्ष लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज खुल गया था । लाला हंस राज कॉलेज की सेवा के लिए जीवन प्रदान कर चुके थे । लाहौर आर्य समाज का वार्षिकोत्सव नवम्बर में हुआ । मुंशीराम जी वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए । उन्होंने पं० गुरुदत्त को आर्यसमाज मंच से दयानन्द कॉलेज के लिए अपील करते सुना । वे पं० गुरुदत्त से बहुत ही प्रभावित हुए और उनसे मिलने गए । मुंशीराम ने वकालत की परीक्षाएं बड़े परिश्रम से दी । लाला लाजपत राय भी उसी वर्ष वकालत की परीक्षा में बैठे थे । इस बार मुंशीराम मौखिकी में फेल हो गए ।

मुख्त्यारी और दुकानदारी

संवत् १६४२ के अन्त में सूदो के चौक में एक दूसरी मंजिल का मकान किराये पर लेकर मुंशीराम ने मुख्त्यारी का काम आरंभ कर दिया । वे आर्यसमाज के प्रधान बन गए । वे हिन्दूसमाज की कुरीतियों के विरुद्ध कार्य करते थे और उनका मकान मालिक वसन्त राय कोहली पौराणिक सनातन धर्म समाज का मंत्री था । उन दोनों में अनेक बार धार्मिक विषयों पर विवाद हुआ, मुकदमें बाजी हुई पर अन्त में विजय सत्य सनातन वैदिक धर्म की ही हुई ।

पिताजी का स्वर्गवास

फाल्गुन १६४२ (फरवरी १८८६) में लाला नानक चन्द अर्धाङ्ग से पीड़ित हो गए । मुंशीराम को गई बार पिताजी की सेवा करने के लिए तलवन जाना पड़ा । मुंशीराम की भक्ति से वे बड़े प्रसन्न हुए । वे कुछ कुछ आर्य समाज के साथ सहानुभूति रखने लगे थे । २६ जून १८८६ को उनकी अवस्था बहुत बिगड़ गई और रात्रि ८.०० बजे उन्होंने मृत्यु का वरण किया । भाइयों और बिरादरी ने उनका अन्तिम संस्कार पौराणिक रीति से करना चाहा, परन्तु दृढ़ व्रती मुंशीराम के रहते उनकी एक न चली । अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से कराया गया । पिताजी की बीमारी, उनके परलोक गमन और घर की सुव्यवस्था करने

में पर्याप्त समय लग जाने के कारण उनकी मुख्त्यारी की दुकान बन्द हो गई ।

सार्वजनिक क्षेत्र में पर्दापण

जालंधर लौटने पर उन्हें पता चला कि अमृतसर के पंडित श्यामदास ने आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी हुई है । मुंशीराम ने तुरन्त इसे स्वीकार कर लिया । पं० श्यामदास 'मूर्त्ति पूजा और अवतार वाद' विषय पर शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो गए । मुंशीराम ने लाहौर आर्यसमाज के लाला सांई दास के पास काशीराम को एक पत्र देकर, शास्त्रार्थ के लिए पंडित लाने के लिए भेजा । उन्होंने उत्तर दिया कि छोटी छोटी आर्य समाजों को बिना हमारी आज्ञा के शास्त्रार्थ नहीं रचाना चाहिए । फिर भी उन्होंने लाजपत नामक एक संस्कृत जानने वाले युवक को काशीराम के साथ भेज दिया । लाजपत की सहायता से शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ । यह तय हुआ था कि शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा परन्तु जनता को प्रभावित करने के लिए पं० श्यामदास हिन्दी में बोलने लगे । फिर क्या था । मुंशीराम स्वयं शास्त्रार्थ करने लगे । शास्त्रार्थ का परिणाम आर्य समाज के लिए अतिशुभ हुआ । तुरन्त तीस-पैतीस लोग आर्य समाज के सदस्य बन गए । जालंधर के आर्य पुरुषों ने यह निर्णय लिया कि भविष्य में सब काम अपने बल बूते पर करेंगे । मुंशीराम ने भी दृढ़ संकल्प किया कि वे भविष्य में किसी पर निर्भर नहीं करेंगे । इस संकल्प की पूर्ति के लिए उनमें वैदिक धर्मों के ग्रंथों के स्वाध्याय करने में रुचि जाग्रत हुई ।

जाति बहिष्कार की धमकी

पौराणिक लोग मुंशीराम जी द्वारा आर्य समाज की सेवा को सहन न कर सके । शास्त्रार्थ में जीतने पर उन्हें जाति बहिष्कार की धमकी दी गई परन्तु मुंशीराम हार मानने वाले कहाँ थे । मुंशीराम और लाला देवराज ने मिलकर निरक्षर ब्राह्मणों की सूची तैयार की और प्रमुख पंडितों को सूचना दी कि उनका ढोंगी जीवन सुधारप्रिय आर्य समाजियों का किसी प्रकार अहित नहीं कर सकता । निर्णय लिया गया कि पंचायत बुलाई जाए । लाला देवराज ने पंडितों के दुर्व्यसवनों की सूची बनाली और उन्हें कह दिया कि उनकी पोल खोल दी जाएगी । बस फिर क्या था । धीरे-धीरे सारे पौराणिक पंडित वहाँ से खिसक लिए । अब मुंशीराम और उनके सहयोगी और भी ज्यादा जोर शोर से आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में लग गए ।

मेलों में वैदिक धर्म-प्रचार

पहले ईसाई लोग दशहरा के मेले पर धर्मप्रचार किया करते थे । इस बार आर्यसमाज ने भी वहाँ पर वैदिक धर्म प्रचार किया । महाशय भक्त राय ईसाई मिशनरी स्कूल के हैडमास्टर थे और वे आर्यसमाज जालंधर के उप प्रधान थे । उनके हाथ में ओ३म् का झण्डा देखकर ईसाइयों की सिट्टी पिट्टी गुम हो गई । लाला देवराज के व्याख्यानों का भी जनता पर खूब असर पड़ा ।

जालंधर आर्य समाज का पहला वार्षिकोत्सव

वकालत की पहली परीक्षा से निवृत होकर पौष १६४३ में मुंशीराम जालंधर आए और आर्य समाज के उत्सव की तैयारी में लग गए । आर्य समाज का स्थान बदला गया । नगर निवासी भव्य नगर कीर्त्तन तथा पं० गुरुदत्त के व्याख्यानों से बहुत प्रभावित हुए । आर्य समाज को भूमि भी मिल गई ।

वकालत में निपुणता

मुंशीराम जी एक योग्य वकील थे । एक सरदार साहब ने अपना मुकदमा उसी वकील को देना चाहा जो सबसे अच्छी बहस करता हो । उसने अदालत में सभी वकीलों को बहस करते देखा और अन्त में उसने पाया कि मुंशीराम सबसे अच्छे वकील हैं और उन्होंने एक हजार रुपये की फीस देकर मुकदमा उन्ही को दिया । मुंशीराम अपने पेशे में निरन्तर तरक्की करते गए । इससे उनकी आय भी खूब बढ़ गई । बीची साहब ने फौजदारी मुकदमों में उन्हें ही अपना वकील बनाया ।

परीक्षा निकट आ गई थी और लाहौर आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव भी निकट आ गया था । दोनों की तैयारी साथ-साथ होने लगी । परीक्षा कुछ समय के लिए स्थगित हो गई । इस बीच उन्होंने आर्यसमाज लाहौर का वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न कराया । उसके बाद कानून की परीक्षा दी और अबकी बार अच्छे नम्बरों से वकालत पास की ।

संवत् १६४५ में मुंशीराम जी पूरे वकील बन गए । अब वह परीक्षा आदि की चिन्ता से पूरी तरह मुक्त हो चुके थे । उनकी वकालत पूरी बुलन्दी पर थी । उनकी आय बहुत अच्छी थी। उन्होंने जालंधर में एक विशाल कोठी बनवाई, जो बाद में उन्होंने आर्य

प्रतिनिधि सभा को समर्पित कर दी । तलवन में भी उन्होंने अपने हिस्से की भूमि में बगीचा लगवाया और मकान बनवाया । बड़ा आदमी बनने और अच्छी आमदनी होने पर उनकी दिनचर्या भी नियमित हो गई । वे प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर सैर को निकल जाते और कुछ दूर दौड़ते भी । बाद में स्नानादि से निवृत होकर; संध्या के प्रश्चात् स्वाध्याय करते, समाचार पत्र पढ़ते और चिट्ठी पत्री लिखते । यह सब काम नियमित रूप से नौ बजे तक पूरा हो जाता था । बाद में अदालत के मुकदमों की तैयारी करते । कचहरी से लौटकर टेनिस खेलते । इस प्रकार वे शरीर और दिमाग को चुस्त रखते थे । इसी समय उनकी रुचि परिवार-सुधार में भी हुई । उन्होंने धर्म पत्नी को पढ़ाने तथा घर से पर्दा आदि कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न आरंभ किया । संवत् १६४५ की ग्रीष्म ऋतु से उनकी धर्मपत्नी ने धर्म ग्रंथो का पढ़ना और समझना आरंभ कर दिया । पुत्री वेद कुमारी जिसकी आयु सात-आठ वर्ष की थी, उसे भी पढ़ाना शुरु कर दिया । पर्दे का झूठा बन्धन समाप्त हो गया और शिवदेवी मुंशीराम के साथ बाहर भी जाने लगी ।

जालंधर आर्य समाज का दूसरा उत्सव

मार्गशीर्ष के दिनों में आर्यसमाज जालंधर का दूसरा वार्षिकोत्सव मनाया गया । लाला देवराज, लाला भक्तराम, काली बाबू और मुंशीराम जी के व्याख्यान और धर्मोपदेश हुए । आर्य समाज जालंधर अब पूरी तरह स्वावलम्बी हो गया था । उन्होंने निकटस्थ ग्रामों में भी प्रचार करना शुरू कर दिया था ।

सत्यप्रेम और धर्मनिष्ठा

मुंशीराम ने लाहौर और जालंधर के अतिरिक्त अन्य आर्यसमाजों में भी प्रचार के लिए जाना प्रारंभ कर दिया था । वे गुरदासपुर के वार्षिकोत्सव पर गए । वहाँ पर वे धनी आर्य समाजियों की चारित्रिक दुरवस्था को देखकर बहुत दुखी हुए । वे आर्यसमाज के प्रचार प्रसार के साथ-साथ जीवन को भी उन्नत बनाने के पक्षपाती थे । सिद्धान्त के साथ समझौता उनकी प्रकृति के विरुद्ध था । इसी कारण उन्होंने कई बार आर्थिक हानि भी सहन की और अकारण मित्रों को शत्रु भी बनाया । सत्यप्रेम और धर्मनिष्ठा के साथ उनमें धर्मप्रचार की भी धुन थी । उन्हें लुधियाना का चिरंजीलाल नामक बांका पहलवान उपदेशक के रूप में एक ऐसा सहयोगी मिला जिसने मुंशीराम के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया । संवत् १६४५ की ग्रीष्म ऋतु में कपूरथला में भी आर्यसमाज का

प्रचार शुरु हो गया । मुंशीराम ने वहाँ पर भी जाकर प्रचार कार्य किया ।

आर्यसमाज जालंधर का तीसरा वार्षिकोत्सव

जालंधर के आर्य पुरुष लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से नवचेतना लेकर लौटते और अपने आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव की तैयारी में लग जाते । मुंशीराम ने लाहौर से लौटकर तीन दिन तलवन में बिताए और फिर रात दिन आर्यसमाज के काम में लग गए । उन्हें अब आर्य प्रचारक कहा जाने लगा था । और यह सही भी था । इस बार पंडित लेखराम के सहयोग से उन्होंने आर्यसमाज के प्रचार की धूम मचादी । यह उत्सव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था । इसमें मुंशीराम के व्यक्तित्व की अपूर्व विजय थी । इस उत्सव से जालंधर की जनता का काया पलट हो गया । पंडित गुरुदत्त के व्याख्यानों का ऐसा असर हुआ कि अनेक सनातनी पंडित और लाला देवराज के पिता लाला सालिगराम भी वैदिक धर्म की ओर प्रवृत्त हो गए ।

राजनैतिक आन्दोलन के साथ संबन्ध

मुंशीराम पायोनिर्यर और ट्रिब्यून जैसे राष्ट्रीय समाचार पत्रों को पढ़ा करते थे । इनमें राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने के समाचार प्रकाशित होते थे । मुंशीराम का भी कांग्रेस के प्रति झुकाव हो गया । उनके मन में इच्छा हुई कि प्रत्येक जिले में कांग्रेस कमेटियाँ बनाई जाएं । जिला जालंधर और होशियारपुर में लाला जी के मित्र काली बाबू पहले से ही इस दिशा में प्रयत्नशील थे । उन्होंने जालंधर में मुंशीराम से सहयोग मांगा । सर सैयद अहमद खाँ कांग्रेम से विरोध रखते थे । इस कारण उनके अनुयायी अनेक मुसलमान कांग्रेस के विरोधी थे । जालंधर में आर्य समाज की स्थापना में इन लोगों ने बाधा पहुँचानी चाही, पर मुंशीराम के व्यक्तित्व के सामने उनकी एक न चली और वहां पर कांग्रेस की स्थापना हो गई । इस प्रकार मुंशीराम भी कांग्रेस के साथ जुड़ गए, पर सार्वजनिक रूप में, कांग्रेस के मंच पर वे सन् १६१६ में ही आए ।

कन्या महाविद्यालय की स्थापना

लाला मुंशीराम का जीवन क्रियात्मक रहा है । उन्होंने स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया । उन्होंने अपनी धर्मपत्नी शिवदेवी को पढ़ने की प्रेरणा दी । उस समय हिन्दुओं की ओर से कोई स्कूल न चलाया जाता था । उन्होंने अपनी पुत्री वेद कुमारी को एक ईसाई स्कूल

में पढ़ने भेजा । २, कार्त्तिक संवत् १६४५ (१६ अक्तूबर १८८८) को जब मुंशीराम कचहरी से लौटकर घर आए तो उन्होंने अपनी बेटी वेद कुमारी को यह गीत गुनगुनाते पाया --

इक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल ?
ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया ।

इस पर मुंशीराम का माथा ठनक गया और सोचने लगे कि इन स्कूलों में तो भारतीय संस्कृति का विनाश किया जा रहा है । बस उसी दिन से उन्होंने आर्यसमाज की ओर से स्कूल खोलने की ठान ली ।

कुछ ही समय पश्चात् लाला देवराज जी के साथ मिलकर लाला मुंशीराम ने कन्या पाठशाला की स्थापना के लिए प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया । शीघ्र ही वहां पर एक पाठशाला खुल गई । आगे चलकर यही पाठशाला 'कन्या महाविद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

सद्धर्म प्रचारक पत्र

लाला मुंशीराम ने आर्यसमाज के उद्देश्य को फलीभूत करने के लिए एक साप्ताहिक पत्र चलाने की आवश्यकता अनुभव की । पंजाब ऐसा प्रान्त था, जहाँ पर उर्दू का अति प्रचार था । उन्होंने अपना पत्र उर्दू में निकालना शुरु किया । लोगों को मुंशीराम पर बड़ा विश्वास था । तुरन्त ढ़ाई ढ़ाई हजार रुपये के चार हिस्सेदार मिल गए । प्रेस का प्रबन्ध भी हो गया । लाला मुंशीराम और लाला देवराज सम्पादक बने । कई वर्ष पत्र घाटे में चलता रहा । बाद में हिस्सेदारों का रुपया लौटाकर मुंशीराम ने प्रेस और पत्र अपनी जिम्मेदारी पर चलाना शुरु कर दिया । पत्र भी लिपि तो उर्दू भाषा की थी, परन्तु उसकी भाषा धीरे -धीरे उर्दू के स्थान पर हिन्दी होती गयी । इसमें संस्कृत भाषा के शब्द भी आ जाया करते थे । मुसलमानों ने इस भाषा का विरोध किया, पर धीरे -धीरे सारे पंजाब में इसी भाषा के प्रयोग ने जोर पकड़ लिया । लोग इस भाषा को आर्य समाजी उर्दू कहा करते थे । आगे चलकर उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' की लिपि भी देवनागरी हिन्दी कर दी । 'सद्धर्म प्रचारक' द्वारा आर्य समाज, का बहुत प्रचार हुआ । 'सद्धर्म प्रचारक' का सम्पादन लाला मुंशीराम के जीवन का महान कार्य था । उन्होंने यह कार्य निष्ठा पूर्वक किया, जिससे उन्हें पर्याप्त ख्याति भी मिली ।

महात्मा मुंशीराम

संवत् १६४६ के माघ मास में लाहौर आर्यसमाज के सनातन धर्म सभा से पराजित होने के भ्रान्त समाचार फैल रहे थे । मुंशीराम को इन समाचारों पर विश्वास नहीं हुआ । २ फरवरी १८८६ को उन्होंने लाहौर पहुँचकर आर्य भाइयों से आग्रह किया कि फैली हुई किंवदत्तियों के असत्य होने पर भी उनका खण्डन करने के लिए आर्यसमाज मंदिर में कुछ विशेष व्याख्यानों का आयोजन किया जाना चाहिए । व्याख्यानों का अयोजन हुआ और भ्रान्त धारणाओं का खण्डन किया गया । लाला मुंशीराम ने लाला सांईदास और अन्य आर्यजनों को कहा कि लकीरी की फकीरी से ऊपर उठकर, जन्मगत जाति भेद को तिलाञ्जलि देकर, गुणकर्म स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था स्थापित करने और तदनुसार ही विवाह संबन्ध स्थापित करने चाहिए । इन क्रान्तिकारी विचारों से सभी चकित रह गए और लाला सांईदास ने तो उन्हें उग्रवृत्ति का क्रान्तिकारी कहना प्रारंभ कर दिया । उन्होंने सभी जालंधर वालों को एक्स्ट्रीम रेडिकल पार्टी कहना शुरुकर दिया । उस समय सभी यह मानने लग गए थे कि वे धर्म के सिद्धान्तों में किसी भी समझौते को मानने वाले नहीं हैं । मुंशीराम अपने काम और विचारों में बहुत दृढ़ थे । उन्हें महात्मा कहा जाने लगा था और इसी कारण आगे चलकर उनके दल को महात्मा दल कहा गया ।

पत्नी की मृत्यु

सम्वत् १६४८ में लाला मुंशीराम की साध्वी पत्नी शिवदेवी का देहान्त हो गया । उनकी चार सन्ताने थी - वेदकुमारी (१० वर्ष), हेमन्त कुमारी (अमृतकला ६ वर्ष), हरिश्चन्द्र (८ वर्ष), इन्द्र (२ वर्ष) लाला मुंशीराम की आयु मात्र ३५ वर्ष थी । आमदनी का अच्छा साधन था । उनके पास अनेक रिश्ते भी आए, परन्तु वे तो आर्य मर्यादा का पालन करना चाहते थे, जिसके अनुसार स्त्री हो अथवा पुरुष, दूसरा विवाह नहीं कर सकते । मरते समय शिवदेवी ने लाला मुंशीराम के लिए ये शब्द लिखे थे--'मुझसे बड़े अपराध हुए हैं । जिनकी मुझे सेवा करनी थी, वे मेरी सेवा कर रहे हैं । बाबूजी ! अब मैं चली । मेरे अपराध क्षमा करना । आपको तो मुझसे अधिक रुपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जाएगी, किन्तु इन बच्चों को मत भूलना । मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें ।" इन शब्दों ने महात्मा मुंशीराम को बड़ा सहारा दिया उन्होंने प्रण कर लिया कि माता की कमी वे स्वयं

पूरी करेंगे । इस समय उनके भाई आत्माराम और उनकी धर्म पत्नी ने बड़ा साथ दिया । वे इन्हीं के साथ रहने जालंधर चले आए । इस भारी विपत्ति में भी वे धर्मशाला में हरिश्चन्द्र को साथ लेकर धर्मप्रचार के लिए चले गए ।

आर्यों को संदेश --प्रतिज्ञा :

'तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है । यह वह सत्य सनातन धर्म है जिसके बिना संसार की सामाजिक व्यवस्था एक पल भर के लिए भी नहीं रह सकती । प्राचीन काल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों को खोलने वाली चावी तुम्हारे ही हाथों में दी गई थी और अब भी अशान्त संसार को शान्ति देना तुम्हारा ही काम है , किन्तु पहले तुमको अपनी सब अपवित्रताओं को धोना होगा ।' आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि तुम दैनिक पंच महायज्ञों के अनुष्ठान में प्रमाद न करोगे, तुम अस्वाभाविक जाति-बन्धन के बन्धन को तोड़कर वर्णाश्रम -व्यवस्था को अपने जीवन में परिणत करोगे, तुम अपनी मातृ भूमि में से अस्पृश्यता के कलंक का समूल नाश कर दोगे और तुम आर्य समाज के सार्वभौम मन्दिर का द्वार मत-सम्प्रदाय, जाति, रंग आदि के भेद-भाव का कुछ विचार न करके मनुष्य मात्र के लिए खोल दोगे । परम-पुरुष परमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा पालन में तुम्हारे सहायक हों ।

गुरुकुल कांगड़ी

वैदिक सभ्यता के प्रति अनुराग और गुरुकुल की स्थापना

लाला मुंशीराम का वैदिक धर्म और आर्यसमाज के प्रति अनुराग निरन्तर बढ़ता गया । उनके वचनों और कर्मों में एक रूपता, ओजस्विता और दृढ़ता थी । उन्होंने भक्ष्याभक्ष्य के मामले में सदैव वैदिक सिद्धान्तों का समर्थन किया । उनके अनुयायी बढ़ते गए । आर्य प्रतिनिधि सभा में उनसे सहमत सदस्यों की संख्या बढ़ती गई और वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान बनाए गए । यह प्रधान संबोधन उनके साथ अन्त तक लगा रहा ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की स्मृति में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज खोला गया था, परन्तु इससे संस्कृत शिक्षण का कार्य वैदिक पद्धति पर न हो सका । मुंशीराम को चिन्ता थी कि वेदप्रचार का काम खूब चले । पं० लेखराम और स्वामी पूर्णानन्द के सहयोग से उन्होंने खूब वेद प्रचार का कार्य किया, परन्तु वे इतने से ही सन्तुष्ट न हुए । उन्होंने वैदिक शिक्षणालय खोलने का विचार किया, जहाँ से आश्रम पद्धति और गुरु-शिष्य परम्परा में दीक्षित आदर्श, संयमी, देशभक्त युवा नागरिक तैयार होकर निकलें । उन्होंने विचार किया कि गुरुकुल की स्थापना ऐसे स्थान पर की जानी चाहिए जो बस्ती से दूर हो, जहाँ पर रहकर ब्रह्मचारी सांसारिक चमक दमक से दूर रहें । ८ आषाढ़ संवत् १६५३ के सद्धर्म प्रचारक में महात्मा मुंशीराम ने गुरुकुल की स्पष्ट योजना प्रस्तुत की थी । इस योजना के क्रियान्वयन के लिए अनेक आर्य समाजों से सहमति के प्रस्ताव आए । ३ अक्तूबर १८६७ की रात्रि में गोविन्दपुर आर्यसमाज के उत्सव पर आर्य भाइयों की एक सभा हुई । इस सभा में सर्व श्री मुंशीराम, रामभजदत्त चौधरी, सीताराम जी लाहौर निवासी, केसरी मल जी दीनानगरी, मुंशी मुकन्दराम जी श्री गोविन्द पुरी जी आदि सम्मिलित थे । इस सभा में सर्वसम्मति से यह निश्चय लिया गया--'आर्य पुरुषों की यह कान्फ्रेस श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा में यह निवेदन करना अत्यन्त आवश्यक समझती है कि गुरुकुल शीघ्र खोला जाए ।' इस प्रस्ताव को सभा के पास भेजने का अधिकार मुंशीराम जी को दिया गया । गुरुकुल खोलने के विचार को व्यापक समर्थन मिला । चारों ओर इसकी चर्चा होने लगी । आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्कालीन मंत्री श्री जय चन्द ने यह विचार प्रस्तुत किया कि गुरुकुल खोलने का आन्दोलन चलाने के लिए १५-२० आर्यजनों की एक समिति का गठन

किया जाए और धनसंग्रह के लिए भी कुछ समितियाँ बनाई जाए । चारों ओर गुरुकुल के विषय में उत्साह जनक चर्चा होने लगी ।

२६ नवम्बर १८६८ के अधिवेशन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुकुल खोलने तथा ऋषि दयानन्द के अधूरे वेदभाष्य को पूरा करने के संबंध में दो प्रस्ताव पारित किए । गुरुकुल की योजना बनाने का कार्य मुंशीराम को सौंपा गया । उन्होंने शीघ्र ही अपनी योजना सभा को सौंप दी । गुरुकुल को प्रारंभ करने के कार्य में ढील होती देखकर मुंशीराम से न रहा गया और उन्होंने अगस्त १८६६ के 'सद्धर्म प्रचारक' में यह घोषणा कर दी-- 'जब तक गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपये इकट्ठे न कर लूंगा, तब तक घर में पैर न रखूंगा ।'

यह प्रतिज्ञा मुंशीराम जी के दृढ़ व्रती होने की पूर्व सूचना थी । २६ अगस्त १८६६ को वे इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए घर से निकल पड़े । चारों तरफ गुरुकुल के प्रति उत्साह तोथ्या, परन्तु साथ ही लोगों के मन में शंकाएं भी थी कि गुरुकुलों से निकले स्नातकों को अंग्रेजी स्कूलों-कॉलेजों में पढ़े लोगों के सामने कौन पूछेगा ।' इन शंकाओं से विचलित हुए बिना मुंशीराम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चले । गुजरां वाला, लालाभूसा, मियानी, रावल पिण्डी, पेशावर, कोइमरी, गुजरात, वजीराबाद, सियालकोट, लायलपुर सांवला, अकाल गढ़ और लाहौर आदि का उन्होंने पहला दौरा किया ।

उन्होंने दूसरा दौरा लाहौर से शुरु किया और वे लाहौर से लायलपुर, मुलतान, डेरा इस्माइल खाँ, मुजफ्फर गढ़ और अमृतसर पहुँचे । तीसरा दौरा पंजाब में ही हुआ । चौथे दौरे में वे हैदराबाद दक्षिण और लखनऊ में गए । दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भाइयों ने भी गुरुकुल के लिए सहायता भेजी । ८ अप्रैल १६०० को उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई । उन्होंने तीस हजार के स्थान पर चालीस हजार रुपया इकट्ठा किया । लाहौर आर्यसमाज की ओर से शोभा यात्रा निकाली गई और महात्मा मुंशीराम का अभिनन्दन किया गया । घर के सब कामकाज को त्यागकर, फलती फूलती वकालत को छोड़कर संसार की मोहमाया से ऊपर उठकर, उन्होंने गुरुकुल की स्थापना के लिए, जो सत्यप्रयत्न किया था, इसके लिए वे सदा सदा के लिए महात्मा पद से विभूषित किए गए ।

मुंशीराम ने सबसे पहले अपने दोनों बेटों को गुरुकुल के अर्पण कर दिया । संवत् १६५६ में अपना पुस्तकालय और संवत् १६६४ में 'सद्धर्म प्रचारक प्रेस' भी गुरुकुल को समर्पित कर दिया । गुरूकुल के दशम वार्षिकोत्सव पर जालंधर स्थित कोठी को भी

गुरुकुल पर न्योछावर कर दिया । गुरुकुल रूपी वृक्ष के लिए उन्होंने अपने स्वास्थ्य को भी खाद बना दिया ।

कांगड़ी में गुरुकुल

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुकुल के लिए भूमि खरीदने तथा मकान आदि बनवाने का दायित्व भी मुंशीराम को सौंप दिया । मुंशीराम ने अनेक स्थान देखे । उनके हृदय में वेद का यह संदेश गूंजता था--

'उपह्वरे गिरीणां, संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत ।।

-यजु-२६/१५

जो मनुष्य पर्वतों के निकट और नदियों के संगम पर योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे, वह उत्तम बुद्धि और कर्म से युक्त होकर विचारशील और बुद्धिमान होता है ।

उन्हें हरिद्वार के पास गंगापार चण्डी पर्वत की तराई का स्थान पसन्द आया । जो भूमि उन्हें पसन्द आती, उसका मूल्य अधिक होता । अन्ततोगत्वा यह समस्या भी हल हो गई ।

नजीबाबाद के रईस स्वनामधन्य चौधरी अमनसिंह ने अपना कांगड़ी गाँव और उसके आस-पास की चौदह सौ बीघा भूमि इस पवित्र कार्य के लिए दान में दे दी । इस दान से वे भी अमर हो गए । जब तक गुरुकुल कांगड़ी का नाम रहेगा, चौधरी अमनसिंह को सदा याद किया जाएगा ।

२२ अक्तूबर १६०१ की सभा की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि चौधरी अमनसिंह की उदारता के लिए उनका धन्यवाद किया जाए और उनके द्वारा दी गई भूमि पर मकान आदि बनवाकर अगामी होली की छुट्टियों में २१ से २४ मार्च १६०२ को गुरुकुल का उद्घाटन समारोह किया जाए । मुंशीराम कांगड़ी गाँव पहुँचे और वहाँ पर जंगल को साफ कराकर झोपड़ियाँ बनवाने लगे । यह कैसा विलक्षण अनुभव रहा होगा, जब महात्मा मुंशीराम ३४ बालकों को लेकर इस स्थान पर पहुँचे होंगे । २ मार्च १६०२ को ये ब्रह्मचारी

पं० गंगादत्त जी के साथ हरिद्वार रेलवे स्टेशन पर पहुँचे । उनके साथ शालिग्राम जी भंडारी भी जालंधर से हो लिए थे । आगे आगे ओ३म् ध्वज था और ब्रह्मचारी दो-दो की पंक्तियों में वेद मंत्रों का पाठ करते हुए कनखल के मुख्य बाजारों से होते हुए गंगातट पर दक्ष मंदिर के पास पहुँचे । बालकों और कार्यकर्त्ताओं में विशेष उत्साह था ।

२१ से २४ मार्च तक गुरुकुल का उद्‌घाटनोत्सव हुआ । पाँच सौ से भी अधिक नर नारी वहाँ जंगल में पहुँच गए । फाल्गुण पूर्णमासी को ४५ ब्रह्मचारियों का वेदारंभ संस्कार हुआ और चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को नियम पूर्वक पढ़ाई प्रारंभ हो गई । वेदारम्भ संस्कार के बाद छः सौ रुपये भिक्षा में प्राप्त हुए । महात्मा मुंशीराम का गुरुकुल स्थापना का दृढ़ निश्चय और त्याग आर्यसमाज के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा ।

गुरुकुल का धीरे-धीरे विस्तार होने लगा । पहले झोंपड़ियाँ बनी, फिर कच्चे मकान बने । एक ओर डाक्टर, औषधालय, संध्या हवन और आश्रम के लिए कमरे बनाए गए । दूसरी ओर अध्ययन कक्ष, भोजन भंडार और भोजन शाला का निर्माण किया गया । ब्रह्मचारियों की संख्या और आवश्यकता के साथ-साथ भवनों की संख्या बढ़ती गई । संवत् १९६५ में महाविद्यालय की स्थापना होने पर विशाल भवनों पर निर्माण किया गया । आचार्य जी का बंगला, परिवार गृह, बढ़ई खाना, गोशाला, व्यायाम शाला आदि बनाए गए । एक सुन्दर बगीचा लगाया गया और वहीं पर स्नानागार बनाए गए । संवत्१९६८ में गुरुकुल ने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया । गुरुकुल के प्रथम दीक्षान्त समारोह को महात्मा मुंशीराम ने संबोधित किया --'गुरुकुल के स्नातकों, तुम गुरुकुल रूपी वृक्ष फल हो । सारे सभ्य संसार की आँखे तुम पर लगी हुई हैं । परमात्मा आशीर्वाद दे कि तुम संसार में धर्म और शान्ति फैलाने का साधन बनकर अपने कुल के यश को सारे संसार में फैलाओ । तुम्हारा कर्त्तव्य इस कारण भी अधिक है कि पीछे आने वाले स्नातक तुम्हारा अनुकरण करेंगे । इसके लिए केवल तुम्ही आदर्श होओगे । इस यज्ञ मंडप में उपस्थित सभी देवियों और सभ्यपुरुषों से प्रार्थना है कि वे सब एकत्र होकर इन स्नातकों को आशीर्वाद दे, जिससे वे अपने धर्म और अपने देश के यश को देश देशान्तरों में पहुँचाने में कृतकार्य हों । हे करुणामय दयालु पिता ! तुम वीर्य और ज्योति के भंडार हो । हम सब को बल दो कि हम वीर्यमान् होकर उस तेज को धारण करें जिसके दृश्य मात्र से सब दुख हमसे दूर हो जायें ।।"

आचार्य मुंशीराम वैदिक आदर्श के मूर्त्त रूप थे । वे तीन सौ ब्रह्मचारियों के नाम जानते थे, उनकी पढ़ाई और स्वास्थ्य के विषय में पूरी जानकारी रखते थे । वे आधीरात को उठकर आश्रम का चक्कर लगाया करते थे । इस बीहड़ जंगल में, जहाँ हिंस्र पशु थे, गुरुकुल के ब्रह्मचारी महात्मा मुंशीराम की छत्र छाया में निर्भर घूमते थे । गुरुकुल के सारे जीवन में न कोई सर्पदंश का शिकार हुआ, न कोई गंगा नदी में डूबा और न कोई किसी हिंस्र पशु का ग्रास बना । यह सब महात्मा जी की चौकन्नी दृष्टि और कार्य विधि के कारण संभव हुआ ।

गुरुकुल की लोक प्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई । पहले वार्षिकोत्सव पर चार हजार नर-नारी एकत्र हुए थे । यह संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती गई । सातवें वार्षिकोत्सव पर साठ हजार नर नारी एकत्र हुए थे और तीन लाख अट्ठाइस हजार रुपये का दान इकट्ठा हुआ था । इन उत्सवों की अपनी विशिष्टता थी । इन उत्सवों में संपूर्ण भारत एक साथ इकट्ठा होता था । गुरुकुल की शाखाएं भी खुलनी प्रारंभ हो गई थी । गुरुकुल की पहली शाखा १३ फरवरी सन् १९०६ को महात्मा जी के कर कमलों से मुल्तान में खोली गई । दूसरी शाखा की आधार शिला कुरुक्षेत्र में महात्मा जी ने रखी । तीसरी शाखा 'गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ' के नाम से देहली से बारह मील दूर खोली गई । चौथी शाखा गुरुकुल मटिण्डू के नाम से हरियाणा में खोली गई । पाँचवी शाखा गुरुकुल रायकोट लुधियाना में खोली गई । छठी शाखा गुरुकुल विद्या मंदिर सूपा के नाम से गुजरात में खोली गई । इसके अतिरिक्त भी अनेक शाखाएं खोली गई । कन्या गुरुकुल देहरादून भी इसी गुरुकुल का अंग है । गुरुकुल की सफलता का श्रेय महात्मा जी के अनथक परिश्रम और अपूर्व साहस को है ।

गुरुकुल का विरोध और सरकार की वक्र दृष्टि

गुरुकुल की स्थापना के साथ -साथ उसका विरोध भी प्रारंभ हो गया था । विभिन्न लोगों ने अपने अपने ढंग से इसका विरोध किया । सरकार भी गुरुकुल को बिल्कुल स्वतंत्र होने के कारण अपने रास्ते में एक बाधा मानती थी । एक गुप्त लेख में गुरुकुल के संबन्ध में लिखा गया था--'आर्यसमाज के संगठन में अभी जो महत्वपूर्ण विकास हुआ है, वह सरकार के लिए संकट का स्रोत है । वह विकास है, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली । इस प्रणाली में चाहे कितने ही दोष क्यों न हों, किन्तु भक्तिभाव और बलिदान की उच्च्व भावना से प्रेरित जोशीले धर्मपरायण व्यक्तियों का दल तैयार करने का यह सबसे सुगम और उपयुक्त

साधन है , क्योंकि यहाँ आठ वर्ष की ही आयु में बालकों को माता-पिता के प्रभाव से भी बिल्कुल दूर रखकर त्याग, तपस्या, और भक्तिभाव के वायुमंडल में उनके जीवन को कुछ निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार ढ़ाला जाता है । जिससे उनके रग-रग में श्रद्धा और आत्मोत्सर्ग की भावना घर कर जाती है । यदि इस प्रकार की शिक्षा का क्रम आर्य समाज के सुयोग्य और उत्साही नेताओं की सीधी देखरेख में जारी रहा तो, इस पद्धति से जो युवक तैयार होंगे, वे सरकार के लिए अत्यन्त भयानक होंगे । वे सब दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश की इस आज्ञा का पालन करेंगे कि श्रद्धा और प्रेम से अपने तन मन धन-सर्वस्व को देशहित के लिए अर्पण कर दो ।' गुरुकुल के संबन्ध में चर्चा ब्रिटिश सरकार में भी होने लगी थी और वे इसे राजद्रोही संस्था मानने लगे थे । इस संबन्ध में गुरुकुल की एक रिपोर्ट में आचार्य रामदेव ने लिखा था--'इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि गुरुकुल में यत्न पूर्वक ऐसे राजनीतिक ब्रह्मचारियों का दल तैयार किया जा रहा है, जिसका मिशन सरकार के अस्तित्व के लिए भयानक संकट पैदा कर देगा ।' एक गुप्तचर ने गुरुकुल के संबन्ध में लिखा था-'गुरुकुल की दीवारों पर ऐसे चित्र लगे हुए हैं जिनमें अंग्रेजी राज्य से पहले भारत की अवस्था और अंग्रेजों के कलकत्ता आने की अवस्था दिखाई गई है । सन् १८५७ के राजद्रोह के चित्र भी लगाए गए हैं । बिजनौर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० एफ० फोर्ड ने जॉन ऑफ आर्क का वह बड़ा चित्र भी गुरुकुल में लगा देखा जिसमें वे अंग्रेजों के विरूद्ध सेना का संचालन कर रहे हैं ।' किसी ने कहा कि गुरुकुल में बम बनाए जाते हैं, बम बनाने सिखाए जाते हैं । वहाँ के ब्रह्मचारी घोड़े पर बैठकर, दायें हाथ में लगाम थामे, बायें हाथ से आकाश में उड़ते पक्षी को निशाना बनाकर भूमि पर गिरा देते हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल ब्रिटिश सरकार के लिए हौआ बन गया ।

सरकारी अधिकारियों का गुरुकुल में आगमन

महात्मा मुंशीराम ने इस दृष्टि से बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया । उन्होंने संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के लेफ्टि० गवर्नर सर जेम्स मेस्टन को दो बार गुरुकुल बुलाया । वे अत्यन्त प्रभावित हुए । इसके बाद भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड दलबल सहित इस संस्था को स्वयं देखने आए । दिल्ली के सेण्ट स्टीफेंस कॉलेज के प्रोफेसर श्री सी०एफ० एण्डूज तो कई मास तक गुरुकुल में रहे । उनके मित्र श्री पोलक, श्री पीपराजन आदि भी आए । तत्कालीन गौरी नौकर शाही के पोषक लखनऊ के दैनिक 'पायोनीयर'
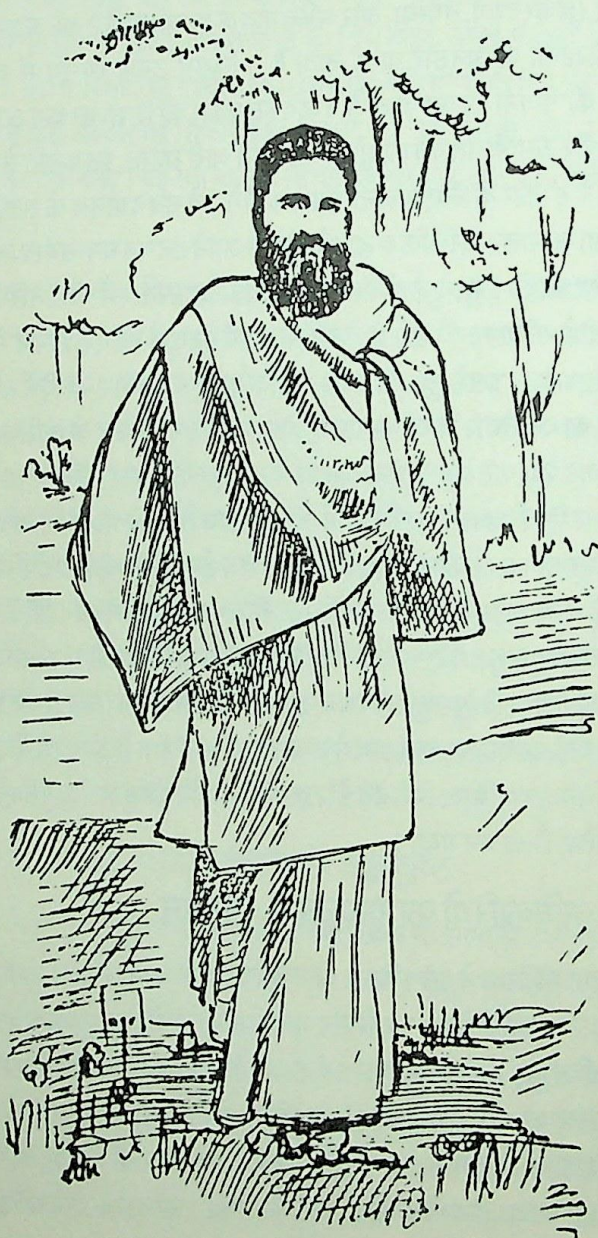
में इनके कई लेख प्रकाशित हुए । इससे गुरुकुल को बदनाम करने का ईसाइयों का षडयंत्र विफल हो गया ।

सन् १६१४ में ब्रिटेन के मजदूर दल के प्रमुख नेता रेम्जे मैक्डॉनेल्ड जो बाद में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री भी बने, भारत यात्रा के दौरान गुरुकुल में भी आए । उन्होंने लन्दन जाकर वहाँ के प्रमुख पत्र, 'डेली क्रानिकिल' में गुरुकुल और आर्यसमाज के विषय में जो भावपूर्ण लेख लिखा, वह उल्लेखनीय है--

'सरकारी लोगों के लिए गुरुकुल एक पहेली है । अध्यापकों में एक भी अंग्रेज नहीं है । अंग्रेजी पढ़ाई और उच्च शिक्षा के लिए पंजाब यूनीवर्सिटी द्वारा निर्धारित पाठ्य पुस्तकें यहाँ काम में नहीं लाई जाती । सरकारी विद्यालय की परीक्षा के लिए यहाँ से किसी भी विद्यार्थी को बाहर नहीं भेजा जाता और विद्यालय से विद्यार्थियों को अपनी उपाधियाँ दी जाती हैं । सचमुच यह सरकार की अवज्ञा है । घबराये हुए सरकारी अधिकारियों के मुख से पहली बात यही निकलेगी कि यह स्पष्ट राजद्रोह है । जहाँ तक मुझे मालूम है, गुरुकुल के संस्थापकों के सिवाय और किसी ने उस असन्तोष को मूर्त्त रुप देते हुए शिक्षा क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है ।

महात्मा मुंशीराम के लिए उन्होंने अनूठे और भावपूर्ण शब्द कहे--

"एक महान भव्य और शानदार मूर्त्ति जिसे देखते ही उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है, हमारे आगे हमसे मिलने के लिए आगे बढ़ती है। आधुनिक चित्रकार ईसा मसीह का चित्र बनाने के लिए उसे अपने सामने रख सकता है और मध्यकालीन चित्रकार उसे देखकर सेण्ट पीटर का चित्र बना सकता है। यद्यपि उस मछियारे की अपेक्षा यह मूर्त्ति कहीं अधिक भव्य और प्रभावोत्पादक है।"

इग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध पत्र 'दि न्यू स्टेट्समैन' ने भी गुरुकुल की भूरी भूरी प्रशंसा की ।

विदेशी गौरी नौकरशाही का प्रकोप तो इन परिस्थितियों में कम हो गया, परन्तु उसकी दृष्टि में गुरुकुल एक सरकार विरोधी संस्था ही बना रहा , क्योंकि गुरुकुल अपने

आरंभिक काल से ही राष्ट्रीय आन्दोलनों में अपना विशिष्ट सहयोग देता रहा । गुरुकुल की आलोचना और विरोध करने वाले कुछ लोग आर्यसमाज में भी थे पर वह नर पुंगव इन तूफानों के बीच बिना घबराये , गुरुकुल की नौका को संभालकर खेता रहा ।

गुरुकुल में कुछ ऐसी विशेषताएं थी जिसने ईसाई, मुसलमान और यूरोपियन सभी को प्रभावित किया । गुरुकुल में अलीगढ़ मुसलिम यूनीवर्सिटी का शिष्ट मंडल आया और उस पर मुग्ध हो गया । डाॅ० असारी और बैरिस्टर आसफ अली गुरुकुल में आए और इस पर लट्टू हो गए । सैडलर कमीशन ने गुरुकुल के विषय में लिखा-'मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा देने के परीक्षण में गुरुकुल को अभूतपूर्व सफलता मिली है ।' मायरन एच० फैल्पस, मि० एण्ड्रयूज, मि० आर० जी० मिलबर्न आदि इतने प्रभावित हुए कि उनका खान पान, रहन सहन सब कुछ भारतीय हो गया । महात्मा गांधी ने गुरुकुल के संबन्ध में कहा था-**'आर्यसमाज के कार्य का सर्वोत्तम परिणाम गुरुकुल की स्थापना है। यह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय संस्था है, जिसका शासन और प्रबन्ध सब स्वायत्त है।'**

आर्य समाज पर सरकारी कोप

सन् १९०० से १९१२ तक का समय आर्यसमाज के लिए कड़ा परीक्षण काल था। सरकार की दृष्टि में आर्यसमाजी होना अपराध समझा जाने लगा था । आर्य समाजी सरकारी कर्मचारियों को केवल आर्यसमाजी होने के कारण परेशान किया जाता था । गौरी नौकर शाही के इशारे पर अक्तूबर १९०९ में पटियाला रियासत में ८४ आर्यसमाजियों को गिरफ्तार करके उन पर राजद्रोह का मुकदमा -चलाया गया । महात्मा मुंशीराम ने सूझबूझ का परिचय दिया । उन्होंने वाणी और लेखनी द्वारा सरकार को चेतावनी दी कि वह आर्यसमाज के विरुद्ध खुली जॉच कराये । वे स्वयं पटियाला अभियोग में बिना फीस लिए, वकील के रूप में मुकदमा लड़ने गए । जोधपुर में पुलिस ने आर्य समाज मंदिर का झण्डा उतार लिया । इस स्थिति से निपटने के लिए महात्मा मुंशीराम ने आचार्य रामदेव की सहायता से 'आर्यसमाज एण्ड इट्स डिस्टैक्टर्स' पुस्तक लिखवाई । इस पुस्तक ने आर्यसमाज के स्वरूप को स्पष्ट करने में सराहनीय कार्य किया । धौलपुर में आर्यसमाज मंदिर का एक भाग गिराकर आम लोगों के लिए टट्टियाँ बनवाई जाने लगी । महात्मा मुंशीराम वहाँ पर गए और आन्दोलन करने की चेतावनी दी । तब जाकर स्थिति यथा पूर्व

बनी । श्री श्याम जी कृष्णवर्मा की इंग्लैण्ड और फ्रांस की राजनीतिक हलचलों, लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह की गतिविधियों के कारण आर्य समाज की ओर सरकार की वक्र दृष्टि उठी । १९०७ में रावलपिण्डी के दंगों में जब आर्यसमाज के लोग निरपराध छूट गए तो वैलण्टाइन शिशेल ने लिखा था-'पंजाब और संयुक्त प्रान्त के राजद्रोही आन्दोलन में आर्यो ने प्रमुख भाग लिया है । जहाँ-जहाँ आर्यसमाज का जोर है, वहाँ वहाँ राजद्रोह प्रबल है' इस प्रकार पूरे जोर से आर्य समाज को राजद्रोही संस्था सिद्ध करने का प्रयास किया गया । सिख रेजिमेंट के क्लर्क गुलाबचन्द को आर्यसमाजी होने के कारण नौकरी से निकाल दिया गया । करनाल के एक जेलदार की डायरी पर टिप्पणी दी गई-'जेलदार तो बहुत अच्छा है, पर आर्यसमाजी है, इसलिए उस पर निगरानी रखनी चाहिए । इस प्रकार झांसी, रोहतक, पटियाला आदि अनेक स्थानों पर इसी प्रकार की कार्यवाहियाँ हुई । महात्मा मुंशीराम ने सब जगह जाकर आर्यो की रक्षा की । आर्यो को संबोधित करते हुए, एक बार महात्मा मुंशीराम ने कहा था--'जो सरकारी नौकर वैदिक ध र्म के गौरव को नहीं मानते, उनको अपनी निर्बलता मानकर आर्यसमाज से जुदा हो जाना चाहिए ।' मुंशीराम ने धैर्य पूर्वक सभी समस्याओं का सामना किया और दूसरो को भी इस संकट की घड़ी में धैर्य बंधाया ।

सन्यासाश्रम में प्रवेश

गुरुकुल को केवल संस्कृत की चटशाला बनाना है, अथवा इसे विश्वविद्यालय का रूप देना है, इस विषय को लेकर मतभेद प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । महात्मा मुंशीराम आपसी संघर्ष को टालने के लिए सदैव चतुराई से काम लिया करते थे । उन्होंने संघर्ष टालने के उद्देश्य से गुरुकुल से पृथक् होने का निश्चय कर लिया उन्होंने निश्चय किया कि वे सन्यासाश्रम में प्रवेश करके गुरुकुल से छुट्टी ले लें । उन्होंने ३० मार्च १९१७ को सभाप्रधान श्री रामकृण जी को अन्तिम पत्र लिखा कि मुझे ११ अप्रैल को यहाँ से चले जाना है । गुरुकुल के पंद्रहवें वार्षिकोत्सव पर उन्होंने गुरुकुल का उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों को सौंप दिया जो उनसे रुष्ट थे ।

१ वैशाख संवत् १९७४ (१२ अप्रैल १९१७) को महात्मा मुंशीराम जी सन्यासाश्रम

में प्रविष्ट होने के पश्चात् **स्वामी श्रद्धानन्द** बन कर मनुष्य मात्र के हो गए । महात्मा जी का सारा जीवन एक ही सूत्र में अनुस्यूत था, और वह था श्रद्धा । सन्यासाश्रम में प्रवेश के समय मायापुर (कनखल) वाटिका में उपस्थित सहस्रों नर नारियों को संबोधित करते हुए कहा था- ' मेरा सारा जीवन श्रद्धा पर आधारित रहा है, इसलिए मैं आप सज्जनों और देवियों के सम्मुख 'श्रद्धानन्द' नाम धारण करता हूँ । श्रद्धापति भगवान मुझे जीवन के इस नए क्षेत्र में सदा कर्त्तव्यपरायण बने रहने के लिए बल प्रदान करें ।

सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने पर स्वामी श्रद्धानन्द को गुरुकुल से भावभीनी विदाई दी गई एवं मानपत्र भेंट किया गया । स्वामी जी ने दिल्ली को अपनी कार्यस्थिली बनाया और हिन्दू जाति के सुधार कार्य में लग गए । इनके पहुँचने से पहले दिल्ली में कोई जागृति न थी । उन्होंने उसे समय के साथ चलाया और विभिन्न सामाजिक चेतना के कार्य शुरू किए ।

इस समय महात्मा जी आर्यसमाज की लगभग सभी मूर्धन्य संस्थाओं के शीर्षस्थ नेता थे । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के २५ दिसम्बर १६०८ में संस्थापक और अध्यक्ष रहे । सन् १६०८ में महात्मा जी को परोपकारिणी सभा का सभासद् और वैदिक मंत्रालय का अधिष्ठाता एवं वैदिक पुस्तकालय का सभासद बनाया गया । आर्य कुमार महासभा के प्रधान, भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति तथा १६२५ में मथुरा में आयोजित महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी के सूत्रधार रहे । सन् १६१७ में अखिल भारतवर्षीय आर्यकुमार सभा के चतुर्थ सम्मेलन में अपने सभापति पद से भाषण देते हुए महात्मा जी ने सर्वप्रथम हिन्दी को मातृभाषा का नाम दिया ।

सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद स्वामी जी ने आर्यसमाज का इतिहास लिखने का विचार बनाया, परन्तु वह कार्य पूरा न हो सका क्योंकि इसी बीच गढ़वाल में (१६१८) दुर्भिक्ष पड़ गया , कनखल के पास कटारपुर में हिन्दू मुसलमानों में लड़ाई हो गई, गुरुकुल में इन्फ्लुएंजा हो गया । बस इन्ही कारणों से यह कार्य पूरा न हो सका ।

राजनैतिक जीवन-एकता के सूत्र

राजनीति में प्रवेश

स्वामीजी की राजनैतिक विचार धारा में समय -समय पर उतार-चढ़ाव आते रहे देहली दरबार के समय सम्राट जार्ज पंचम को संबोधित करके उनका लेख 'सम्राट तुम यहीं रहो' उनकी राजभक्ति का परिचायक था । परन्तु महात्माजी की राजभक्ति में खुशामद बिल्कुल न थी । महात्मा जी ने लाला लाजपतराय के देश निर्वासन का घोर विरोध किया था । १६०६-७ के सरकारी दमन का भी उन्होंने घोर विरोध किया था । १६०७ में जब लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी कांग्रेस के डेपुटेशन पर विलायत गए तो उन्होंने कहा था-'इन डेपुटेशनों से उन्नति की आशा करना हानिकारक है मेरी अपनी राय यह है कि इस धन और समय को व्यर्थ न खोकर हिन्दुस्तान के एक एक व्यक्ति को अपना चरित्र और आगामी सन्तति के चरित्र को सुधारने में लग जाना चाहिए ।'

नौकर शाही के दमनकारी रौलट एक्ट के विरुद्ध जिस समय गांधीजी ने सत्याग्रह की घोषणा की, उस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी का गांधी जी को पूरा सहयोग था । स्वामी जी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सत्याग्रह के प्रति ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे । "७ मार्च १६१६ को सत्याग्रह की तैयारी के लिए दिल्ली में पहली सार्वजनिक सभा हुई । स्वामी श्रद्धानन्द पहली बार राजनैतिक मंच पर खड़े हुए । उन्होंने सत्याग्रह के संबंध में लोगों को बताया कि सत्याग्रह का उद्देश्य राजनैतिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक है । सत्याग्रह के संबन्ध में स्वामी जी ने बम्बई में ५ व्याख्यान दिए । १६ मार्च को भड़ौच और २० मार्च को अहमदाबाद में व्याख्यान दिए । २२ मार्च को देहली आकर स्वामी जी ने देखा कि यहाँ पर तो कोई जाग्रति नहीं है ।२४, २७ और २६ मार्च को जन सभाएं हुई । ३० मार्च को देहली में अभूतपूर्व हड़ताल हुई । टांगा और ट्राम तक बन्द थे । स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा गांधी के विश्वास भाजन बन चुके थे । महात्मा गांधी उन्हें बड़ा भाई और दिल्ली को **श्रद्धानन्द की** नगरी कहा करते थे ।

घण्टाघर पर सिंहनाद

'मारो मेरी छाती में गोली'

स्वामी जी के नेतृत्व में ३० मार्च को कई सार्वजनिक सभाएं हुई और जलूस निकाला गया । स्टेशन पर गोली चलने का समाचार मिला । स्वामी जी तुरन्त वहाँ पहुँच गए और वहाँ एकत्रित भीड़ को लेकर कंपनी बाग पहुँच गए । स्वामी जी भाषण दे ही रहे थे कि--

किसी ने आकर सूचना दी कि घण्टाघर पर गोली चल गई । लोग समाचार सुनते ही आपे से बाहर हो गए, किन्तु स्वामी जी ने उत्तेजित भीड़ को संभाले रखा । सेना ने आकर, सारी सभा को घेर लिया, फिर चीफ कमिश्नर भी कुछ घुड़सवारों के साथ आए । मशीनगनें भी लाकर खड़ी कर दी गई । स्वामीजी ने चीफ कमिश्नर को कह दिया कि यदि आपके लोगों ने जनता को उत्तेजित किया तो शान्ति रक्षा का मैं जिम्मेदार नहीं हूँ । अन्यथा शान्ति भंग न होने देने का सारा जिम्मा मेरा है । ऐसी उत्तेजित भीड़ को शान्त रखना स्वामी जी की ही सामर्थ्य का काम था । ४० हजार का विशाल जन समूह स्वामीजी के पीछे पीछे चल रहा था । घण्टाघर पर गुरखे सिपाही रास्ते से हटकर एक ओर पंक्ति बनाकर खड़े हो गए । लोगों ने समझा कि हमारे लिए रास्ता छोड़ा गया है किन्तु वहाँ पहुँचते ही बन्दूक दागी गयी । लोगों को शान्त रहने का आदेश देकर बन्दूक दागे जाने का कारण जानने के लिए स्वामी जी आगे बढ़े । तुरन्त दो दो किरचें स्वामी जी की छाती पर बड़े घमंड और धृष्टता के साथ एक गुरखे ने तानदी और कहा कि तुम्हें छेद देंगे । वे शान्ति के साथ सामने खड़े हो गए और गरज कर कहा-'मैं खड़ा हूँ, गोली मारो ।' इतने में ही आठ-दस किरचें स्वामी जी की छाती पर तान दी गई । लोग उत्तेजित हो गए परन्तु स्वामी जी ने संकेत से सत्याग्रह की बात कही । लगभग ३ मिनट तक किरचें इसी प्रकार तनी रही । चारों और स्तब्धता का साम्राज्य था । तभी एक घुड़सवार अंग्रेज सी० आई० डी० पुलिस का मि० ऑड़ आया और उसने पुलिस के आदमी से पूछा कि क्या गोली चलाने की उसने आज्ञा दी थी ? स्वामी जी ने उस अंग्रेज से पूछा कि क्या आपने गोली चलाने का शब्द सुना था ? स्वामीजी महाराज निर्भय आगे बढ़े । स्वामीजी महाराज की निर्भयता के कारण लाल अक्षरों में लिखी जाने वाली लाल घटना टल गई । सत्याग्रह के इतिहास में स्वामीजी के निर्भयता का उज्ज्वल प्रमाण रूप इस घटना का सदा स्वर्णाक्षरों में उल्लेख किया जाएगा । भारत
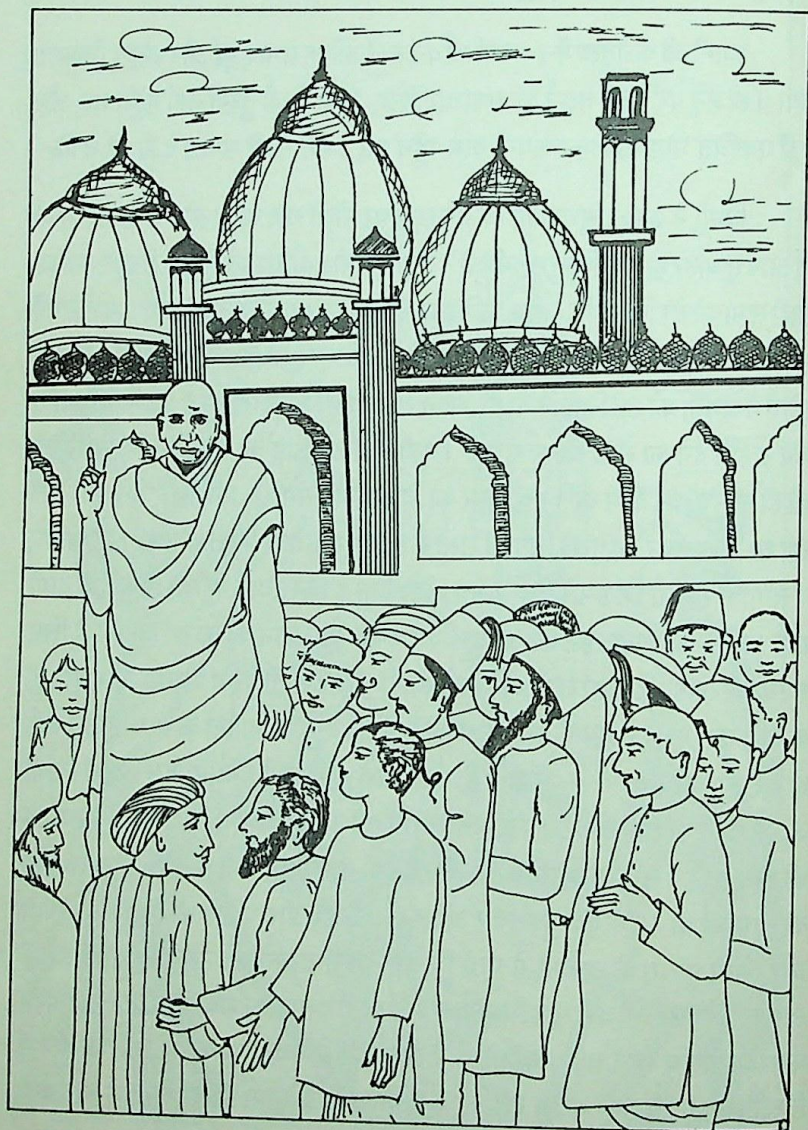
के उप प्रधानमंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल ने इस घटना के विषय में लिखा था --

'वीरता और बलिदान की मूर्त्ति स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही १६१६ का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में है। स्वामीजी छाती खोलकर सामने आ जाते हैं और कहते हैं--'लो चलाओ गोलियां।' उनकी उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता। मैं चाहता हूँ कि उस वीर सन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे।'

जामा मसजिद के मिम्बर से मन्त्रोंच्चार

३० मार्च की घटनाओं ने केवल दिल्ली निवासियों में नहीं बल्कि सारे देश में मानसिक क्रान्ति की भावना भर दी । उस दिन सायंकाल के समय जो भावना जनता में उत्पन्न हो गई थी, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि पिछले १२ घण्टों में जो परिर्वतन आया, वह १२ वर्षो में भी न आया होगा । कहावत है कि 'लहू' पानी की अपेक्षा गाढ़ा होता है ।' पुलिस और फौज की गोलियों ने जिन लोगों को घायल किया, उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी । दोनों का लहू बहकर मिल गया । ३१ मार्च के प्रातः काल हिन्दू मुसलिम का भेद मिट गया था । ३० मार्च की गोली से आहत एक मुसलमान का जनाजा निकला। जनाजे में हिन्दू मुसलमान सभी थे । स्वामी श्रद्धानन्द और हकीम अजमल खाँ भी थे । निगम बोध घाट पर भी हिन्दुओं के संस्कार के समय हिन्दू मुसलमान सभी थे । ईदगाह और निगमबोध घाट पर बेतहाशा भीड़ थी । दोनों जगह देश भक्ति और एकता पर व्याख्यान हो रहे थे ।

इस जोश की चरम सीमा उस समय प्रकट हुई जब ४ अप्रैल १६१६ के दिन दोपहर बाद की नमाज के पीछे जामा मसजिद में मुसलमानों का एक विशाल जल्सा हो रहा था । उसमें मौलाना अब्दुल्ला चूड़ी वाले ने आवाज देकर कहा--'स्वामी श्रद्धानन्द जी की तकरीर भी होनी चाहिए ।' कुछ नौजवान उठे और नया बाजार से स्वामी जी को ले आए। स्वामी जी के लिए जामा मसजिद का वह सदर दरवाजा खोला गया जहाँ से शाह आलम नमाज पढ़ने आया करते थे । नार-ए-तकबीर से मसजिद गूंज उठी । 'अल्ला- हो-अकबर' के नारों के साथ स्वामी जी मसजिद की वेदी पर आरूढ़ हुए । शायद यह भारत के ही नहीं, इस्लाम के इतिहास में पहला अवसर था जब एक गैर मुसलिम व्यक्ति ने जामा मसजिद की

वेदी से वेदमंत्र पढ़ा --

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता

इस वेद मंत्र के द्वारा ईश्वर के स्वरूप का वर्णन सभी ने ध्यान पूर्वक सुना और मसजिद में वेदमंत्रोच्चारण पर किसी का भी विरोध का स्वर नहीं उभरा । स्वामी जी ने ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ओ३म् के साथ अपना व्याख्यान समाप्त किया । इसके बाद छः अप्रैल को फतह पुरी मसजिद में भी स्वामीजी का ख्याख्यान हुआ ।

यह हिन्दू मुसलिम एकता का अनुपम उदाहरण है । इसका श्रेय भी स्वामी श्रद्धानन्द महाराज को है । मंदिरों में भी मुसलमानों के भाषण होने की अद्‌भुत घटनाएं दीख पड़ने लगीं ।

इस सारे आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के नजरबन्द किए जाने के कारण स्वामी श्रद्धानन्द के हाथ में था । उन दिनों दिल्ली में राम राज्य था । कहीं पर कोई अवांछित घटना नहीं हुई और हिन्दू मुसलिम एकता का तो यह सर्वोत्तम उदाहरण था ।

अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष

सत्याग्रह के संबन्ध में स्वामीजी का महात्मा गांधी से तीव्र मतभेद हो गया । उन्होंने २ मई १६१६ को सत्याग्रह समिति से त्यागपत्र दे दिया । उन्होंने त्यागपत्र में लिखा कि 'मेरी सम्मति में रौलट एक्ट मानव स्वतंत्रता तथा न्याय के मूलभूत सिद्धान्त पर कुठाराघात करते हैं, उसकी अवज्ञा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझूँगा । इस समय मैं विशेष रूप में अपने देश में एकता स्थापित करने, पंचायतों द्वारा आपस के झगड़े निपटाने, स्वदेशी तथा राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी के प्रचार करने और सरकारी यूनीवर्सिटियों में स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षा को विकसित करने में लगाना चाहता हूँ । अन्त में मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरे हृदय में आपके लिए प्रेम तथा आशा के भाव वैसे ही विद्यमान हैं जैसे पहले थे और जब आपकी ओर से किसी ऐसे धार्मिक कार्य के लिए फिर बुलाया जाऊंगा , जिससे मैं सहमत हो सकूं तो आपके पीछे चलकर क्रिया द्वारा साथ देने में जरा भी आगा पीछा न करूंगा ।'

इतना सब होने पर भी स्वामी श्रद्धानन्द कांग्रेस के कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे । ८ जून १६१६ को इलाहाबाद में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई । उसमें

स्वामी जी के आग्रह पर कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में किया जाना निश्चित हुआ । इसके आयोजन का संपूर्ण दायित्व स्वामीजी पर आ गया । स्वामीजी को इसका स्वागताध्यक्ष बनाया गया । जलियाँवाला काण्ड की घटना अभी सभी के दिमाग में ताजा थी । सैकड़ों युवाओं को गोली से भून दिया गया था, माताओं की गोद सूनी हो गयी थी, पत्नियों की मांग का सिंदूर पुछ गया था । उस समय कोई अमृतसर में ऐसा अधिवेशन करने की सोच भी न सकता था, परन्तु धुन के पक्के स्वामी श्रद्धानन्द ने यह कर्म अपने हाथ में ले लिया । ऐसे समय कांग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाना स्वामीजी के अद्भुत धैर्य एवं साहस का परिचायक है । उस समय भयंकर वर्षा हुई । २४ दिसम्बर को १२ बजे स्पेशल ट्रेनें आने वाली थी, उस दिन पंडाल गिर गया । प्रतिनिधियों के लिए बनाई गई छोलदारियाँ पानी में तैरने लगी । स्वामी जी ने नगर वासियों से घरों को खाली करने के लिए कहा--फिर क्या था स्टेशन पर आकर लोग प्रतिनिधियों को अपने घरों में ले गए ।

स्वामी जी ने अपना भाषण हिन्दी में दिया । यह भाषण भी बहुत महत्वपूर्ण था--'यदि जाति को स्वतंत्र देखना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्त्ति बनकर अपनी संतान के सदाचार की बुनियाद रखो । जब सदाचारी ब्रह्मचारी हो शिक्षक और राष्ट्रीय हो शिक्षा पद्धति तभी राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले नौजवान निकलेंगे, नहीं तो इस प्रकार आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी ।' कांग्रेस मंच से पहली बार उन्होंने हरिजनों के संबंध में आवाज उठाई थी--'जिन साढ़े छः करोड़ अछूतों को ईसाई ब्रिटिश गवर्नमेण्ट रूपी जहाज का लंगर बनाना चाहते हैं, आंज से वे साढ़े छः करोड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे अपितु हमारे भाई और बहन हैं । उनकी पुत्रियाँ और पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढ़ेंगे । उनके गृहस्थ नर नारी हमारी सभाओं में सम्मिलित होंगे । हमारे स्वतंत्रता प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कन्धे से कन्धा जोड़ेंगे और हम सब एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ही जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे ।

महात्मा गांधी ने इस भाषण से प्रभावित होकर यंग इण्डिया में लिखा था 'स्वागत समिति के अध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द जी का भाषण उच्चता, पवित्रता , गंभीरता और सच्चाई का नमूना था । वक्ता के व्यक्तित्व की छाया उसमें आदि से अन्त तक लगी हुई थी । मनुष्य मात्र के प्रति उसमें सद्भावना प्रकट की गई थी ।' महात्मा गांधी ने अछूतोद्धार के कार्य को आगे चलकर अपनाया ।

पुनः गुरुकुल में

कांग्रेस के इस अधिवेशन के बाद काफी दिनों तक स्वामी जी पंजाब के लोगों की सेवा में लगे रहे । गुरुकुल कांगड़ी के प्रेमियों और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान जी के आग्रह पर स्वामी जी पुनः ११ फरवरी १९२० को गुरुकुल कांगड़ी में आ गए । गुरुकुल कांगड़ी के अधिकारियों के स्वामी जी का निर्वाह न हो सका और दूसरी ओर महात्मा गांधी के साथ छोटे-मोटे मतभेद होते हुए भी देश में जो नवचेतना, जागृति और स्फूर्ति पैदा हो गई थी , उसमें स्वामी जी को देश का हित दृष्टिगोचर होता था । गुरुकुल में बैठना उनके लिए सभव नहीं हो रहा था । इस बार उन्होंने प्रधान जी को लिखा-'इस समय मेरी सम्मति में असहयोग की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि का भविष्य निर्भर है । यदि यह आन्दोलन अमृतकार्य हुआ और महात्मा गांधी को सहायता न मिली तो देश की स्वतंत्रता का प्रश्न पचास वर्ष पीछे पिछड़ जाएगा । मैं इस कार्य से रुक नहीं सकता ।' इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द ने राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि माना और वे गुरुकुल से चले आए ।

असहयोग के मैदान में

३-४-५ नवम्बर १९२१ को देहली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमैटी की बैठक हुई । इसमें सामुदायिक सत्याग्रह का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । ७-८ नवम्बर को हिन्दुओं की कांफ्रेंस में 'गौरक्षा' के नाम पर असहयोग आन्दोलन को संगठित करने का निर्णय लिया गया । स्वामीजी को इस कार्य के लिए गठित उप समिति का अध्यक्ष बनाया गया । उस समय भारत में युवराज को आना था । 'युवराज के बहिष्कार' का निर्णय आन्दोलन के लिए अच्छा मौका हाथ में आ गया । सरकार ने दमन चक्र चलाया और सत्याग्रह का अवसर अनायास ही उपस्थित हो गया । स्वामीजी ने देहली में सत्याग्रह करने का विचार किया ।

गुरु का बाग और गिरफ्तारी

स्वामी जी असहयोग आन्दोलन के प्राण थे । वे भयंकर क्रान्तिकारी थे । पंजाब के गवर्नर ओडवायर को शिकायत थी कि पंजाब में सारी विपत्ति दिल्ली से आती थी । लाला दुनी चन्द को स्वामी जी ने पत्र लिखा कि यदि आवश्यकता हो तो मैं लाहौर पहुँचूं । यह पत्र गवर्नर ओडवायर के हाथ लग गया । उस पर ओडवायर ने आदेश दिया 'स्वामी

जी को अमृतसर में गिरफ्तार न किया जाए बल्कि लाहौर पहुँचकर पैर में बेड़ी और हाथ में हथकड़ी लगाकर बाजारों में घुमाया जाए । शहर में मशीनगनें लगा दी जाएं, दो हजार हथियार बन्द फौज बाजारों में खड़ी कर दी जाए और स्वामी जी को इस प्रकार अपमानित किया जाए कि लोगों के दिल दहल जायें ।' ओडॉयार की दिल में ही रह गई । उन्हीं दिनों अमृतसर के 'गुरु का बाग' सिक्खों की ओर से सत्याग्रह चल रहा था । उन दिनों लाहौर जाना नहीं हुआ ।

१० दिसम्बर १६२२ को स्वामीजी अमृतसर पहुँचे । दिल्ली की शाही जामा मसजिद के मिम्बर की शोभा बढ़ाने वाले आर्यसन्यासी ने अमृतसर के अकाल तख्त की भी शोभा बढ़ाई । स्वर्ण मंदिर में पहुँचकर अकाल तख्त से एक ओजस्वी भाषण दिया । उन्होंने कहा कि 'शिरोमणि गुरुद्धारा कमेटी का इशारा पाते ही दिल्ली से १०० आदमी आने के लिए तैयार हैं । उन्होंने यह भी घोषणा की कि पाँच हजार रुपये की सहायता दिल्ली की ओर से दी जाएगी । दोपहर के १ बजे स्वामी जी 'गुरु का बाग' गए । सायं साढ़े पाँच बजे स्वामीजी को गिरफ्तार कर लिया गया और अमृतसर जेल में बन्द कर दिया गया । ५ अक्तूबर तक मुकदमा चला जिसमें स्वामी जी को चार मास की साधारण कैद की सजा दी गई । २६ अक्तूबर को स्वामीजी को सीखचों की गाड़ी में बन्द करके मियाँवाली जेल पहुँचाया गया । २७ नवम्बर को पंजाब के छोटे लाट सर एडवर्ड मैकलेगन जेल का निरीक्षण करने आए और स्वामीजी से पूछा-'कहिए आप सर्वथा आराम से तो हैं' स्वामीजी ने कहा --'हाँ, मुझे सभी जगह आराम है ।' २८ दिसम्बर को स्वामी जी ने कथा आरंभ की ही थी कि जेलर ने आकर कहा--'चलिए बाहर, आप यहाँ नहीं रह सकते । आपकी रिहाई का वारण्ट आ गया है ।' अमृतसर और जालंधर में भाषण करते हुए स्वामीजी २६ दिसम्बर को देहली पहुँच गए । अमृतसर में सिक्खों ने उनका शानदार अभिनन्दन किया । सचमुच यह अत्यन्त दु:खजनक और विस्मयपूर्ण सत्य है कि राष्ट्रीयता में ओतप्रोत और देश की निर्बलताओं की पूर्णतः उन्मूलित करने में अहर्निश तत्पर ऐसे महान व्यक्ति को साम्प्रदायिक कैसे समझ लिया गया । वह तो राष्ट्रीय महापुरुष थे ।

स्वामी श्रद्धानन्द ने जेल से लौटकर कहा-'मेरी सम्मति में जेल -मैनुअल दिखावा है । अभी चरित्र गठन में बड़ी कमी है । मेरी सम्मति में स्वदेश के लिए, राष्ट्र के लिए पहली आवश्यकता यह है कि जनता को ब्रह्मचारी संयमी बनाकर, उसमें सहन शक्ति फूंककर

एक आत्मोन्नत स्वराज्य सेना खड़ी की जाए, तब वैयक्तिक दासता की जंजीरें काटकर अत्याचार से युद्ध हो सकेगा ।------मुझसे अल्पशक्ति वाले मनुष्य के लिए यही बड़ा काम है कि ब्रह्मचर्य के उद्धार और दलित जातियों के उत्थान का मार्ग जो अपने को सूझा है, उसका निर्देश आर्य जाति के आगे रखने का यत्न करूँ ।"

कांग्रेस से जुदाई

गांधीजी की अध्यक्षता में बेलगांव में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वामीजी उनके विशेष निमंत्रण पर वहाँ सम्मिलित हुए । गांधीजी ने अपने भाषण में गुरुकुल की व्यवस्था की प्रशंसा की । स्वामी जी दलितोद्धार को परमावश्यक मानते थे । परन्तु कांग्रेसी नेताओं ने इस ओर से आँख मूंदी हुई थी । अतः स्वामी जी २३ जुलाई १६२३ को कांग्रेस के प्रधानमंत्री मोतीलाल जी को निम्न पत्र लिखकर कांग्रेस से अलग हो गए ।

"मैंने अमृतसर और मियाँवाली जेलों में यह अनुभव किया है कि चरित्र गठन और अस्पृश्यता निवारण द्वारा स्थापित हुए राष्ट्रीय एक्य के बिना कांग्रेस अथवा उस सरीखी राजनीतिक संस्थाएं कुछ भी नहीं कर सकेंगी । मैं अब अपनी शक्ति इस कार्य में लगाना चाहता हूँ । इसलिए आप मेरा त्याग पत्र स्वीकार करें ।"

हिन्दू महासभा

कांग्रेस से निराश होकर स्वमीजी ने हिन्दू महासभा का द्वार खटखटाया । स्वामी जी का स्वभाव था कि जिधर भी चलते थे, तलवार की धार की भाँति चीरते हुए चलते थे । हिन्दू महासभा में प्रविष्ट होते ही उन्होंने पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल के ३४ स्थानों का दौरा किया । इन दौरों में स्वामीजी ने हिन्दुओं को जगाया । काशी में १८ से २० अगस्त १६२३ तक होने वाले वार्षिक अधिवेशन में अनेक प्रतिनिधियों को लेकर सम्मलित हुए । वहाँ से लौटने पर स्वामी जी ने लिखा -- 'यदि अस्पृश्यता का पाप धुल जाता और विधवाओं के पुनर्विवाह की रुकावट एकदम ही उठा दी जाती तो मुझको अधिक सन्तोष होता । यदि आग्रह किया जाता तो दोनों प्रस्ताव बहुत अधिक सम्मति से अवश्य स्वीकृत हो जाते, परन्तु आदरणीय सभापति पं० मालवीय जी की सम्मति को मानते हुए , मैंने काशी के ब्राह्मणों को एक ओर अवसर देना उचित समझा जिससे वे स्वयं जनता का हित करते हुए हिन्दू जाति का सम्मान प्राप्त कर सकें । मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि दलित

भाइयों को मंच से भाषण नहीं करने दिया गया ।'

स्वामीजी ने हिन्दू महासभा में अपना विशेष स्थान बना लिया था, परन्तु उनके क्रान्तिकारी कार्यक्रमों में कट्टर पंथी पौराणिकों को आर्यसमाजी होने की बू आने लगी थी, शंकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थ ने अपने एक भाषण में कहा--'सनातन धर्म के नाम से आर्य समाज का काम होता है । लोगों को शुद्ध करके यज्ञोपवीत देकर ब्राह्मण बनाया जाता है हमें धोखा देकर ऐसा काम किया जाता है ।'

सन् १९२५ में रोहतक में हरियाणा प्रान्तीय हिन्दू कांफ्रेंस मालवीय जी की अध्यक्षता में हुई । विषय नियामक समिति में एक गौड़ ब्राह्मण ने बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का विषय प्रस्तुत किया । मालवीय जी ने धमकी दी कि यदि इस प्रस्ताव के लिए आग्रह किया गया तो वे अपने सनातनी साथियों सहित कांफ्रेंस छोड़कर चले जाएंगे ।' पंडित नेकी राम जी और भाई परमानन्द जी का झुकाव भी मालवीय जी की ओर ही था । स्थिति बिगड़ रही थी । स्वामी जी ने विधवा समर्थकों को आश्वासन दिया कि इस विषय पर दिल्ली अधिवेशन में चर्चा की जाएगी, परन्तु मालवीय जी के रहने पर वहाँ भी इस विषय को प्रस्तुत न किया जा सका । स्वामीजी इस प्रकार की गतिरोध की स्थिति में काम न कर सकते थे । वे हिन्दू महासभा से अलग हो गए ।

मलाबार में हिन्दुओं पर अत्याचार

मलाबार में मुसलिम मोपला जाति ने हिन्दुओं पर भाँति-भाँति के अत्याचार किए । हजारों हिन्दू बलात् मुसलमान बना लिए गए । हजारों को तलवार के घाट उतारा गया । हजारों का सतीत्व उजाड़ा गया । हजारों अनाथ हो गए । उनकी जायदाद लूट ली गई । अन्य स्थानों पर भी दंगे हुए । स्वामी जी ने देखा कि यदि हिन्दुओं को संगठित न किया गया तो हिन्दुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा । उनकी संख्या, धन और विद्या आत्म रक्षा के बिना रखी ही रह जाएगी । ऐसा विचार आने पर स्वामीजी ने हिन्दू संगठन का नाद बजाया । स्वामी जी ने अनुभव किया कि वास्तविक हिन्दू मुसलिम एकता जिसके लिए वे राजनीतिक क्षेत्र में प्रयत्नशील रहे हैं, तब तक संभव नहीं है, जब तक हिन्दुओं का संगठन दृढ़ न हो । इसके लिए उन्होंने आन्दोलन प्रारंभ कर दिया । उन्होंने अनेक लेख लिखे, व्याख्यान दिए और एक पुस्तक 'हिन्दू संगठन मरणोन्मुख जाति का रक्षक' लिखी । इसमें

चार बातों पर बल दिया गया था --

१. जो लोग अज्ञान, स्वार्थ अथवा प्रलोभन के कारण वैदिक धर्म को त्यागकर अन्य मतावलंबी हो गए हैं, शुद्धि संस्कार द्वारा उन्हें पुनः आर्य हिन्दू धर्म से दीक्षित कर लिया जाए। यदि कोई अन्य भी वैदिक धर्म में प्रविष्ट होना चाहे, तो उसे भी प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया जाए । उन्होंने कहा कि जब मुसलमानों को तबलीग का अधिकार है, तो हिन्दुओं को भी शुद्धि कार्य में पीछे नहीं रहना चाहिए । इसके लिए स्वामी जी ने फरवरी १६२३ में आगरा में 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' की स्थापना की और उन्होंने दो लाख से भी ज्यादा मलकानों को शुद्ध किया ।

२. वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार किया जाए । स्वामी जी की मान्यताओं में ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान था । गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी सभी के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक था । किसी भी युवक का २५ वर्ष से पहले तथा युवती का १६ वर्ष से पहले विवाह न हो । किसी भी विधुर को पुनः विवाह का अधिकार न हो । यदि वे विवाह करना भी चाहें, तो उनका विवाह विधवा से ही हो । बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व को सर्वथा बन्द कर दिया जाए ।

३. बालविधवाओं को विवाह की अनुमति निःसंकोच दी जाए और उन्हें शास्त्रीय व्यवस्थानुसार कन्या ही माना जाए । स्वामी जी की दृष्टि में स्त्री वर्ग का पराधीन, पद्दलित और अपमानित रखते हुए हिन्दू समाज को संगठित और शक्ति संपन्न करना असंभव है । स्वामी जी ने इसीलिए विधवाओं के पुनर्विवाह को अपने कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया । विधवाओं के कल्याण के लिए उन्होंने वनिताविश्राम आश्रम की भी स्थापना की ।

४. स्वामी जी की मत था कि वर्णव्यवस्था भी प्राचीन पद्धति पर ही होनी चाहिए। जात पांत के सहस्रों विभागों में बँटा हुआ, भिन्न-भिन्न उपजातियों में बंटा हुआ हिन्दू समाज इन सब कुरीतियों की परम्परा के ज्यों का त्यों बना रहने से कभी भी संगठित और सशक्त नहीं हो सकता । इसके लिए उन्होंने दलितोद्धार सभा का गठन किया । दलितोद्धार उनके संगठन के कार्यक्रम का प्राण था ।

स्वामी जी के कार्यक्रम की एक विशेषता थी । यद्यपि वे हिन्दुओं को संगठित करना चाहते थे, परन्तु इसमें दूसरे धर्मानुयायियों के प्रति किसी प्रकार द्वेष न था । स्वामी जी तो

विश्व बन्धुत्व के वैदिक सिद्धान्त को मानने वाले थे । उन्होंने सन् १९२३ में ईद के दिन हिन्दुओं को संबोधित करते हुए कहा था कि वे कोई ऐसा कार्य न करें जिससे मुसलमान भाईयों को किसी प्रकार की ठेस पहुँचे । स्वामी जी के हृदय की विशालता, उदारता, सहिष्णुता वन्दनीय है ।

आर्य संगठन

जीवन के अन्तिम दिनों में स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दू संगठन के स्थान पर 'आर्य संगठन' शब्द का प्रयोग करने लगे थे । आर्य संगठन की सार्थकता एवं व्यवहारिकता के विषय में स्वामी जी ने लिखा था- 'हिन्दू संगठन के स्थान में आर्यसंगठन इसलिए लिखा है कि बिना आर्यसमाज का संगठन हुए हिन्दू संगठन में कृतकार्यता न होगी । इसलिए पहले आर्यसमाज का ही संगठन करना होगा ।' स्वामी जी ने सन् १९२५ में पँजाब का दौरा किया । इस दौरान स्वामी जी ने आर्यसमाज के दोनों दलों को मिलाने का प्रयास किया । इस अभिप्राय से वे दोनों दलों के नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं से मिले । उन्होंने इस मेल के लिए कुछ व्यवहारिक सुझाव भी दिए ।

पटाक्षेप

स्वामी जी महाराज ने दलितोद्धार तथा परावर्त्तन के जो महत्वपूर्ण कार्य किए थे, उससे अनेक धर्मान्ध तथा स्वार्थी नेता बौखला उठे थे । इन स्वार्थी नेताओं ने अशिक्षित तथा साधारण जनता को इतना बरगला दिया था । कि वे इनके प्राणों के ग्राहक हो गए । स्वामी जी के पास प्रतिदिन धमकी भरी चिट्ठियां आती थी, परन्तु स्वामी जी ने कभी इनकी परवाह न की और वे अपने कार्य में लगे रहे । स्वामी जी की सुरक्षा की दृष्टि से कुछ लोगों ने उनके निवास पर पहरा भी बिठा दिया था और कुछ खालसा और आर्य भाई हर समय उनकी सेवा में तत्पर रहते थे । उस समय स्वामी जी ने लिखा था--'परमपिता ही मेरा रक्षक है---इस प्रकार की सहायता स्वीकार करना, मेरे जीवन भर के सिद्धान्तों के विरुद्ध है---आर्यसन्तान में विश्वास के ऐसे अभाव को देखकर मुझे आश्चर्य होता है । मैं यह भी समझता हूँ कि मेरे शरीर की रक्षा के लिए ऐसे उपाय पर विचार करने में हमारे मुसलमान भाइयों का तिरस्कार है । मैं धमकियों से भरे संदेश भेजने वालों को ऐसा पतित नहीं समझता जैसा वे स्वयं अपने आपको समझते है ? जो मुझसे सच्चा प्रेम करते हैं उनसे मेरी

प्रार्थना है कि वे मुसलमान भाईयों के प्रति सहिष्णुता दिखाएं और मुझे अपने सदा के माने हुए सिद्धान्तों की रक्षा में सहयोग दें ।

स्वामी जी घनश्यामदास बिड़ला के आग्रह पर बनारस गए और वहाँ बीमार होकर लौटे । वहाँ से आकर बीमारी की ही हालत में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ गए । उनकी बीमारी बढ़ती ही गई । उनकी चिकित्सा डॉ० सुखदेव और डॉ० अंसारी कर रहे थे । डॉ० अंसारी की दवा का उनके ऊपर विशेष प्रभाव होता था । आधी बीमारी उनके दर्शन से ही भाग जाती थी । वे चार दिन के लिए दिल्ली से बाहर गए और बीमारी ज्यादा बढ़ गई । अंसारी के आने पर पुनः स्वास्थ्य में सुधार हुआ , पर स्वामी जी ने कहा--'अन्दर से यह आवाज नहीं उठती कि मैं खड़ा हो जाऊंगा । वसीयत लिखलो तो अच्छा है ।' लोगों ने बात टाल दी पर दोपहर को स्वामी जी ने अपने छोटे बेटे पं० इन्द्र को बुलाया और कहा--'इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं । तुम एक काम जरूर करना । मेरे कमरे में आर्यसमाज के इतिहास की सामग्री पड़ी है, तुम उसे निकाल कर इतिहास जरूर लिख डालना । इतिहास के लिखने में मुझे माफ न करना । मैंने बड़ी भूलें की हैं । तुम्हें तो मालूम है कि मैं क्या करना चाहता था और किधर पड़ गया 'तेज' और 'अर्जुन' को मेरी भावना के अनुसार चलाते रहना । गुरुकुल की रक्षा करना ।'

डॉ० सुखदेव ने कहा कि--'स्वामी जी अब आप अच्छे हो रहे हैं ।' स्वामी जी ने कहा--' आप लोग तो ऐसा ही कहते हैं, पर मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा यह शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा । इस रोगी देह से देश का क्या कल्याण होगा । अब तो एक ही इच्छा है कि दूसरे जन्म में नई देह से इस जीवन का काम पूरा करूँ । २१ दिसम्बर को व्याख्यान वाचस्पति पं० दीन दयाल आए, उनसे स्वामी जी ने कहा--' इस कलियुग में मोक्ष की इच्छा नहीं । मैं तो चोला बदलकर दूसरा शरीर धारण करना चाहता हूँ । इच्छा है कि फिर भारत वर्ष में ही उत्पन्न होकर उसकी सेवा करूँ ।' २३ दिसम्बर को स्वामी चिदानन्द जी शुद्धि सभा के प्रधान राजा रामपाल सिंह का स्वास्थ्य के संबंध में पत्र लेकर आए, उन्हें भी स्वामी जी ने यही लिखवाया--' अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण करके शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूँ ।' स्वामी जी की भावनाएं कितनी महान एवं उदात्त थीं ।

प्रतिदिन की भांति प्रो० इन्द्र जी स्वामी जी के कमरे में गए तो देखा कि सभी कमरे

खुले हैं और स्वामी जी प्रगाढ़ निद्रा में हैं । पं० इन्द्र जी वापस चले गए और सुरक्षा की दृष्टि से एक युवक को ऊपर भेज दिया । दोपहर में डॉ० सुखदेव जी, कन्या गुरुकुल की आचार्या विद्यावती जी और भक्त जमुना दास आदि दर्शनार्थ आए । पौने चार बजे स्वामीजी ने सबको विदा किया । सेवक धर्म सिंह ने कमोड़ लाकर दिया । स्वामी जी नित्य कर्मो से निवृत्त होकर मसनद के सहारे ऐसे बैठ गए, मानों अमृत पीने के लिए बैठे हों । कमोड़ उठाकर रखा ही था कि सीढ़ियों से एक युवक ऊपर आया । धर्म सिंह ने उसे रोकने का प्रयत्न किया , परन्तु उसने स्वामी जी के दर्शनों का आग्रह किया । स्वामी जी ने आवाज सुनकर कहा कौन है? अन्दर आने दो ।" अब्दुल रशीद नामक उस युवक ने आते ही कहा--'स्वामी जी मैं आपसे इस्लाम के सम्बन्ध में कुछ वार्तालाप करना चाहता हूँ ।' स्वामी जी ने कहा--'भाई मैं बीमार हूँ । तुम्हारी दुआ से राजी हो आऊंगा, तो तुमसे बात करूँगा । उसने पानी मांगा । स्वामी जी के इशारे पर सेवक ने उसे पानी पिलाया । पानी पीकर भीतर आते ही उस हत्यारे ने मसनद के सहारे बैठे स्वामी जी पर पिस्तौल दाग दी । आँख की झपक में दो फायर हो गए । लपक कर सेवक ने पीछे से पकड़ा । इतने में उसने तीसरा फायर भी कर दिया । धर्मसिंह ने अपनी जान की परवाह किए बिना दुष्ट हत्यारे का सामना किया तो उस पर भी गोली दाग दी गई । हत्यारा भागना ही चाहता था कि धर्मपाल विद्यालंकार ने आकर उसको दबोच लिया और उसे आधे-घन्टे तक जब तक पुलिस न आगई , दबोचे रखा । स्वामी जी की मृत्यु का सामाचार बिजली की भाँति चारों ओर फैल गया ।

आदर्श धर्म सुधारक, आदर्श आचार्य, आदर्श कर्मयोगी नेता, दीन-दलितों के उद्धारक, परावर्तन के सूत्रधार, राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार, श्रद्धा के साक्षात् स्वरूप, ईश्वर के सत्यनिष्ठ उपासक स्वामी श्रद्धानन्द ने सर्वहुत करके मानव कल्याणार्थ, अपने प्राणों की बलि दे दी ।

बलिदान के तीसरे दिन शनिवार २५ दिसम्बर को जो विराट शवयात्रा निकली, वह सम्राटों को भी रिझाने वाली थी । उस दिन का जनसमूह दिल्ली की गलियों में समा नहीं रहा था । सुदूर प्रान्तों के लोग आकर इस जुलूस में सम्मिलित हुए । हरिद्वार से गुरुकुल कांगड़ी के सभी ब्रह्मचारी और कर्मचारी कुलपिता के अन्तिम दर्शन करने देहली पहुँचे । गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ उठकर दिल्ली आ गया था । अमृतसर से लाहौर तक के आर्य भाई, सिख भाई इस जुलूस में सम्मिलित हुए थे । मुस्लिम सम्प्रदाय के अनेक नेता और दिल्लीवासी

इस जुलूस में सम्मिलित हुए । शवयात्रा में दो-ढ़ाई मील के मार्ग पर नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ रहे थे । शहर के मुख्य भागों से होता हुआ यह जुलूस दोपहर बाद यमुना के किनारे पहुँचा । अपने हृदय सम्राट के नश्वर शरीर को अग्नि देव की भेंट कर देहली निवासी अपने घरों को लौट गए । वे ऐसे निराश थे मानों कि उनका सर्वस्व लुट गया हो ।

राष्ट्रीय नेताओं ने स्वामी जी के निधन पर आँसू बहाए । उस समय सारा राष्ट्र स्वामी श्रद्धानन्द के कर्त्तृव्य को स्मरण करके बिलख रहा था । उस अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति सभी देशवासी श्रद्धानत थे । उस शानदार व्यक्तित्व की मृत्यु भी शानदार थी । उसकी शहादत हमारे लिए सदैव कर्त्तव्य की बलिवेदी पर र्स्वस्व लुटाने के लिए प्रेरणा देती रहेगी ।

उपसंहार

एकता का सूत्रधार - श्रद्धानन्द

संसार में कभी-कभी ऐसे महापुरुष जन्म लेते हैं जो अपने, त्याग, तपस्या, परमार्थ एवं बलिदान से नए युग का और नए इतिहास का निर्माण करते हैं । उनके पदचिन्हों पर चलकर आने वाली पीढ़ियाँ अपने को धन्य मानती है । सामाजिक, राजनैतिक , धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में नई दिशा प्रदान करने वाले महापुरुषों की श्रृंखला लम्बी है और हमें ऐसे महापुरुषों का श्रद्धापूर्वक स्मरण करना चाहिए ताकि हम उनके जीवन और कृतित्व से प्रेरणा ग्रहण कर सकें तथा सामाजिक कल्याण के कार्य करके अपने जीवन को अर्थवर्त्ता तथा सार्थकता प्रदान कर सकें । युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे ही महामानव थे । वे एक ऐसी पारसमणि थे जिसके स्पर्श से अनेक पाप-पंक में निमग्न मनुष्य स्वर्ण बन गए और उनका तेजोदीप्त निर्मल सुरभित जीवन दूसरों के काम में लग गया । ऐसे ही महापुरुषों ने सर्वमेध यज्ञ तक करने में भी संकोच नहीं किया । वे अपनत्व से ऊपर उठ गए थे । वे सबके लिए हो गए थे । और ऐसे ही एक महामानव थे स्वामी श्रद्धानन्द जो मात्र एक बार स्वामी दयानन्द के ओजस्वी, तेजस्वी स्वरूप को देखकर, उसके अकाट्य तर्कों से प्रभावित होकर, उनकी ईश्वर और धर्म की व्याख्या सुनकर उनके हो गए । स्वामी श्रद्धानन्द का पूर्व नाम मुंशीराम था । अनेक दुर्व्यसनों से ग्रस्त मुंशीराम का जीवन स्वामी दयानन्द के उपदेशामृत का पान करके सुवर्णमय हो गया । उनका सारा संसार ही आलोकित हो गया । उनकी सभी दशों दिशाएँ सुवासित हो गयीं । वह जिस दिशा में भी गया, उनकी चरण-रेख वहीं पर अंकित हो गई । उन्हीं कदमों पर आज भी अनेक चलने को लालायित हैं ।

वकील मुंशीराम की मानसिक और बौद्धिक चेतना की जागृति उच्च शैल शिखर से आविर्भूत शुभ्र जलस्रोत के समान थी जो कल कल करती चारों दिशाओं में फैल गई । चेतना के उस अजस्र स्रोत से मानव कल्याण की जलधारा फूट पड़ी । धीरे-धीरे वह पतली जलधारा शिवालिक की उच्च पर्वत श्रृंखलाओं से उतर कर हरिद्वार के विस्तीर्ण प्रान्तर में ठहर गई और उसने चारों ओर रम्य वातावरण की सृष्टि की । यहाँ पर न रुक कर यह उद्दाम प्रवाह धारा राष्ट्रीय क्षितिज पर उभर कर, सभी को एक दृष्टि से देखने तथा सभी का

कल्याण करने के लिए अग्रसर हो उठी--'जिस दिन पवित्र सन्यासाश्रम में प्रवेश किया, उसी दिन सारे संसार को एक परिवार समझने, सारे संसार के धन को एक आँख से देखने और लोक लज्जा को छोड़कर लोक सेवा में दत्तचित्त होने का व्रत धारण कर लिया था ।' माया पुरी की वह वाटिका धन्य है, जहाँ से यह सुव्रती जन जन के उद्धार के लिए राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की ओर बढ़ चला ।

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में अनेक मोड़ आए । वे पौराणिक जगत से निकल कर आर्य जगत के सिरमौर बने । यहा पर उन्होंने राष्ट्रीय विचार धारा को नई ऊर्जा तथा देश की रक्षा में तत्पर नागरिक देने के लिए अपनी प्राचीन गौरवमयी शिक्षा पद्धति पर गुरुकुल की स्थापना की । अब उनका क्षेत्र बढ़ गया और वे सामाजिक तथा राजनैतिक क्षितिज पर छाते गए । उनके जीवन में कहीं पर भी ठहराव न था । वे तो तीर की भाँति आगे बढ़ जाते थे । जब राजनैतिक जीवन की छुद्रताएं सामने आई और उन्हें अपना अभीष्ट प्राप्त न होता दिखा तो हिन्दू महासभा, हिन्दू संगठन, आर्यसंगठन, दलितोद्धार, अछूतोद्धार तथा धर्म परावर्तन की दिशा में आगे बढ़ चले ।

उनके जीवन में विभिन्न सोपान और परिवर्तनों और उनके द्वारा प्रवर्त्तित एकता के सूत्रों को समझने के लिए उनके लेखों और ग्रंथों का अनुशीलन अनिवार्य है । स्वामीजी ने पत्रकारिता की महत्ता को अपने जीवन के प्रारंभिक चरणों में ही पहचान लिया था । वे शब्द की शक्ति से परिचित थे । इसलिए उन्होंने १८ फरवरी १८८६ को जालंधर से 'संद्धर्म साप्ताहिक' प्रारंभ किया । इस पत्र की रीति नीति को देखकर लाला सांईदास ने कहा था-'यह पत्र समाज में नया युग लाएगा । यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह युग हितकर होगा या अहितकर ।" ये शब्द ठीक वैसे ही, जैसे कि उन्होंने मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के आर्यसमाज लाहौर में प्रविष्ट होने पर , पहले दिन उनके भाषण के बाद कहे थे-- 'आर्यसमाज में यह नई स्पिरिट आई है, देखें, यह आर्य समाज को तारती है या डुबो देती है ।' लाला सांईदास की विलक्षण परीक्षण शक्ति की उद्भावना को स्वामी श्रद्धानन्द ने सकारात्मक दिशा में प्रवृत्त होकर गौरव ही प्रदान किया । इस 'सद्धर्म प्रचारक' को पढ़कर एक सज्जन के आक्षेप करने पर कि --'दयानन्द के इतने कट्टर शिष्य बनते हो, पर महर्षि ने तो अपना सारा साहित्य हिन्दी में लिखा है, आप सद्धर्म प्रचारक उर्दू में क्यों निकालते हैं ? उन्होंने 'प्रचारक' को हिन्दी में निकालने का निश्चय कर लिया और मार्च १९०७ में

'सद्धर्म प्रचारक' गुरुकुल कांगड़ी से हिन्दी में प्रकाशित होने लगा । १६११ में उन्होंने 'प्रचारक' को दैनिक कर दिया । इसे उन्होंने दिल्ली से प्रकाशित किया तथा इसमें राजनीति की गतिविधियों को प्रमुखता दी गई । उनके बड़े पुत्र 'हरिशचन्द्र' प्रचारक के संपादक थे। ३० जनवरी १६१५ को यह पत्र पुनः हरिद्वार से प्रकाशित होने लगा । यह पत्र आर्य समाज की सार्वभौम नीतियों का नियामक था । महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के भावों और विचारों का संपूर्ण प्रतिफलन उसमें होता था । १६०४ में 'सत्यवादी' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया गया। इसके प्रथम संपादक पं० पद्म सिंह शर्मा थे । स्वामी श्रद्धानन्द के संपादन में १६२० में गुरुकुल कांगड़ी से 'श्रद्धा' नाम की साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ । दक्षिण भारत के अंग्रेजी शिक्षित समुदाय तक अपने विचारों को पहुँचाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने १ अप्रैल १६२६ से अंग्रेजी साप्ताहिक 'दि लिबरेटर' निकाला । स्वामी जी से प्रेरणा लेकर इन्द्र जी ने 'अर्जुन', 'विजय' और 'सत्यवादी' साप्ताहिक निकाले । स्वामी जी के दौहित्र श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने 'नवयुग' नामक एक दैनिक का संपादन किया । १६२६ में स्वामी जी की हत्या हो जाने पर वीर सावरकर ने अपने छोटे भाई डॉ० नारायण सावरकर को रत्नगिरि बुलाया और उन्हें दो पत्र निकालने की प्रेरणा दी । इसमें एक पत्र 'श्रद्धानन्द' था । यह पत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी की पावन स्मृति में प्रारंभ किया गया था । इसके प्रथम अंक में उनका अपना लेख "श्रद्धानन्द जी की हत्या" भी प्रकाशित हुआ था ।

स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे । वास्तव में वे यह मानते थे कि एक ही भाषा होने से एकता का सूत्रपात किया जा सकता है । छः दिसम्बर १६१३ को भागलपुर में हुए चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर भाषण करते हुए स्वामी जी ने उस समय कहा था--'बिना एक राष्ट्र भाषा के प्रचार के राष्ट्र का संगठित होना ऐसा ही दुष्कर है जैसा बिना जल के मीन का जीवन । जिस समाज के सभासदों के पास एक दूसरे के हार्दिक भावों को समझने का कोई एक साधन नहीं, उनका संगठन दृढ़ कैसे हो सकता है ।' भारत वर्ष के नेताओं ने यह तो मान लिया है कि एक राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता, परन्तु इस विषय में अभी तक मतभेद है कि कौन सी राष्ट्र भाषा बन सकती है । मेरी सम्मति यह है कि आर्यभाषा ही राष्ट्रभाषा बन सकती है । इस भाषा को हम केवल हिन्दुओं की ही भाषा नहीं प्रत्युत सारे देश की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते

हैं ।" स्वामी श्रद्धानन्द भाषायी एकता को भी राष्ट्रीय एकता का एक प्रमुख सूत्र मानते थे ।

स्वामी श्रद्धानन्द जात पाँत के भेदभाव को दूर करना चाहते थे । उनके विचार से इससे 'एकता' के मार्ग में बाधा पड़ती है उनके गुरुकुल में मेहतरों के बच्चे भी सवर्णों के बच्चों के साथ साथ रहते, पढ़ते, खेलते और खाते थे । २६ दिसम्बर १६१६ को अमृतसर कांग्रेस के अपने स्वागताध्यक्ष भाषण में उन्होंने अछूतोद्धार को कांग्रेस कार्यक्रम का आवश्यक अंग बनाने का प्रस्ताव रखा था ।--'इस पवित्र जातीय मन्दिर में बैठे हुए अपने हृदयों को मातृभूमि के पवित्र जल से शुद्ध करके प्रतिज्ञां करो कि साढ़े छः करोड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे बल्कि हमारे भाई बहन हैं । उनकी पुत्रियाँ और पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढ़ेंगे, उनके नर-नारी हमारी सभाओं में शामिल होगें और स्वतंत्रता प्राप्ति के युद्ध में हमारे कंधे से कंधा जोड़ेंगे ।'

वे एकता स्थापना के सूत्रों के अन्तर्गत ही 'अछूतोद्धार' को मानते थे । उनका दिल उस समय रो उठा था, जब पं० मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में आयोजित हिन्दू संगठन की सभा में एक अछूत को अपने विचार प्रकट करने से रोक दिया गया था । स्वामी श्रद्धानन्द ने ३१ मार्च १६१६ की घटनाओं का विवरण इस प्रकार दिया था--'३१ को पचास हजार मातमदारों के साथ मैं कब्रिस्तान की ओर चला, मुसलमान शहीद का जनाजा हिन्दू बराबर कन्धा दे रहे थे । शहीद की कब्र पर उसके खून के पैबन्द से बरसों के बिछुड़े हुए दिल एक दूसरे से जुड़ गए थे । फिर शाम को दो और जनाजे कब्रिस्तान की ओर चलते करके मैं तीन अर्थियों के साथ श्मशान भूमि में पहुँचा और दाहकर्म के पीछे परमेश्वर के दरबार में शान्ति के लिए प्रार्थना की और हिन्दू मुसलमानों को ईश्वर दत्त एकता को स्थिर रखने के लिए अपील की तो एक सिक्ख भाई ने कहा--'हम पर क्यों जुल्म करते हो ? सिक्ख भी कौम के साथ हैं ।" उन हजारों की भीड़ में उस समय सैंकड़ों की आँखों से प्रेम की जल धारा बह रही थी और जब मैं श्मशान भूमि से चल दिया, तो प्रिंसिपल सुशील कुमार रूद्र मुझे आकर गले मिले और कहा--मातृभूमि के निरपराध पुत्रों पर अत्याचार नहीं देख सकता, मेरा हृदय जाति के साथ है और प्रत्येक सच्चा ईसाई आपके साथ है ।"

स्वामी जी के इन शब्दों को सुनकर कौन होगा, जो उन्हें संकुचित दायरों में बाँधने का प्रयत्न करे । वह सारे मानव समाज के थे, पूरा राष्ट्र उनका अपना था । उनकी शहादत

सूर्य का वह प्रकाश है जो सब पर समान रूप से पड़ता है और जीवन का संचार करता है।

४ अप्रैल १६१६ की घटना हिन्दू मुसलिम एकता का एक विशिष्ट उदाहरण है। स्वामी जी महाराज ने दिल्ली की शाही जामा मसजिद से वेदमंत्र 'त्वं हि नः पिता वसो, त्वं माता शतक्रतो' के साथ अपना संदेश आरंभ किया था। इसके बाद उन्होंने फतहपुरी मसजिद में भी जनता को संबोधित किया था। 'हिन्दू मुसलमानों को और अधिक संगठित होकर देश की परतंत्रता की बेड़ियाँ काटनी है।' उनकी मान्यता थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता को प्राप्त किया जा सकता है।

सन् १६२२ में पंजाब में अजनाला के पास 'गुरु का बाग' को लेकर सिक्खों ने मोर्चा लगाया हुआ था। उसमें भाग लेने के लिए स्वामी जी अमृतसर पहुँचे और अकालतख्त से अपना सुप्रसिद्ध व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान ने हिन्दू-सिक्ख एकता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

जिस समय अब्दुल रशीद अपनी मूर्खताभरी चेष्टा से इस्लाम के माथे पर कलंक का टीका लगा रहा था, उधर गोहाटी में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थी। स्वागताध्यक्ष महोदय ने स्वामी जी को उसमें आमंत्रित किया। वे स्वयं तो रुग्णावस्था के कारण उसमें सम्मिलित न हो सकते थे, परन्तु उस समय उन्होंने जो तार द्वारा संदेश भिजवाया, वह एकता का यज्ञ है--

"On Hindu-Muslim unity depends future well being of India"

अर्थात् भारत का भावी सुख हिन्दू मुसलिम एकता पर आश्रित है।'

स्वामी जी महाराज एकता पर कितना बल देते थे, यह उनके इन कथनों से सर्वथा स्पष्ट है : 'मैं धमकियों से पूर्ण संदेश भेजने वालों को ऐसा पतित नहीं समझता जैसाकि वे स्वयं अपने आपको समझते हैं। जो मुझसे सच्चा प्रेम करते हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे मुसलमान भाइयों के प्रति सहिष्णुता दिखाएं और मुझे अपने माने हुए सिद्धान्तों की रक्षा में सहायता दें।'

निस्संदेह राजनीतिज्ञों और योद्धाओं का किसी जाति के निर्माण करने में बड़ा हाथ

होता है । परन्तु उनके नाम सहज में ही भूल जाते हैं, जबकि उन महात्माओं के नाम जं किसी जाति के नवीन जीवन को बनाते हैं, आगामी नस्लों की स्मृति में सदा बने रहत हैं । उन्हीं में स्वामी श्रद्धानन्द जी थे । उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए अपना सर्वस् न्योछावर कर दिया । इसके लिए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी ।

जो सोचते हैं कि वे किसी एक सम्प्रदाय के लिये सोचते थे, वे साम्प्रदायिक भाव से परिपूर्ण थे, वे गलती पर हैं, स्वामी जी महाराज तो इन छुद्र सीमाओं से ऊपर उठ चु थे । वे कर्म, अकर्म और विकर्म का भेद जानते थे । उनके विचार उदार थे । उनका हृद विशाल था । उनका कर्त्तृव्य सहिष्णु था । उनकी विनम्रता, निर्भीकता, बलिदान का भा और अटल विश्वास ही उनके जीवन का श्रृंगार थे । वे मनुजता का मान थे । वे शूरता व शान थे । वे ऋषियों की आर्ष आन थे । वे भारत भू का अभिमान थे ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यपरायण, ईश्वर विश्वासी, स्वाभिमान निर्भीक, आदर्श आचार्य, छात्र वत्सल, दृढ़, सिद्धान्तवादी, सभी कार्यो में अग्रणी, सर्वस समर्पण कर्त्ता, एकता के सूत्रधार राष्ट्रनायक स्वामी श्रद्धानन्द को हमारी विन श्रद्धाञ्जलि ।

लेखक -परिचय

नाम	: डॉ० धर्मपाल
पिता का नाम	: श्री महाशय ओ३म् प्रकाश जी
जन्मस्थान	: बड़ौत, जिला मेरठ, उत्तरप्रदेश
जन्म तिथि	: १६ मार्च १६४२
शिक्षा	: एम०ए० (अंग्रेजी) बी० एड०, एम० एड, एम० ए० (हिन्दी) पी० एच० डी० (हिन्दी) ; अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा

लेखन कार्य	दिनकर का वीर काव्य, तुलसी के ब्रजभाषा काव्य में वक्रोक्ति, प्रेम चन्द साहित्य विश्वकोष, आर्य समाज आज के संदर्भ में, भारत में माध्यमिक विद्यालयों के अंग्रेजी अध्यापकों की वृत्ति -दीक्षा का अध्ययन, सामयिक उन्मेष, युगसन्दर्भ, निकष, आर्यश्रेष्ठी, आचार्य रामदेव, नैतिक शिक्षा-भाग १ से १२
पत्र-पत्रिकाएं	आर्य सन्देश का वर्षो सम्पादन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग नवभारत टाइम्स, पंजाब केसरी, हमारायुग, मधुमती, प्रकट राजभाषा तथा आर्य समाज की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे नियमित लेखन तथा अनुवाद कार्य
आकाशवाणी और दूरदर्शन	आकाशवाणी और दूरदर्शन पर नियमित साहित्यिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विषयों पर नियमित वार्ताएं, परिचर्चाएं तथा अन्य कार्यक्रम
साहित्यिक संगोष्ठियाँ	साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संगोष्ठियों में राष्ट्रीय अन्तरार्ष्ट्रीय स्तर पर सहभागिता । आथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया, भारतीय अनुवाद परिषद, हिन्दी साहित्य परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाओं के सदस्य,
आर्य समाज के संगठनों की सदस्यता	आर्य समाज रामकृष्ण पुरम, आर्य समाज शालीमार बाग, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य विद्या परिषद्, आर्य विद्या सभा, तथा विभिन्न विद्यालयों की प्रबंध समितियों में सदस्यता, मंत्री अथवा प्रधान आर्य गर्ल्स कॉलेज अम्बाला की प्रबंध समिति के सदस्य, महर्षि शिला निर्माण समिति के अध्यक्ष, विद्या शोध संस्थान के अध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय हरिद्वार की शिष्ट परिषद, कार्य परिषद तथा विद्वत् परिषद् के सदस्य, गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी तथा स्वामी श्रद्धानन्द चिकित्सालय के सदस्य, बाल ज्योति एजूकेशन सोसाइटी के मंत्री,
सम्प्रति	रीडर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली-२